चन्दामामा
नवम्बर १९८३
Rs 2.50

जीवन और हनु की बातचीत

संचार शताब्दी के बारे में

टेलीविजन देखते समय आप को लगता है कि पूरे स्क्रीन में लगातार प्रकाश होता रहता है। यह भ्रम है। वास्तव में, स्क्रीन में छोटे-छोटे हजारों बिन्दु होते हैं जो कि 525 पंक्तियों में जड़े रहते हैं। ये बिन्दु एक के बाद एक, बायें से दायें, ऊपर से नीचे की ओर बढ़ते हुए प्रकाशित होते रहते हैं। इसे 'स्कैनिंग' कहा जाता है: पूरा स्क्रीन प्रत्येक सैकन्ड में 30 बार 'स्कैन' होता है। इसकी गति इतनी तेज होती है कि वह सब एक साथ प्रकाशित होते हुए दिखायी देते हैं। प्रत्येक प्रकाशित बिन्दु में धुंधलेपन या चमक की विभिन्न किस्म के अनुसार ही आप वास्तव में जैसा चित्र देखते हैं वैसा बन जाता है।

जरा कल्पना कीजिये, आप एक सैकन्ड के लिए प्रदर्शन रोक रहे हैं, तो आप एक चमकीला सा स्पाट देखेंगे जिसके चारों ओर

धुंधला सा है।

रेडियो द्वारा लम्बी दूरी तक प्रसारण 'आइनोस्फीयर'– पृथ्वी से 50 से 400 किलोमीटर तक-विद्युतित् वायु की परत– द्वारा संभव हो सका है। ऊपर की ओर भेजी गयी रेडियो तरंगें इन परतों से टकरा कर वापस पृथ्वी पर आ जाती हैं। प्रसारण केन्द्र सीधी दिशा के प्रसारणों के लिए इस क्रिया का प्रयोग अत्यधिक दूरी के स्थानों तक पहुंचाने में करते हैं। रेडियो तरंगें किसी कोण से भेजी जाती हैं, ताकि वे पृथ्वी पर रेडियो स्टेशन से काफी दूरी पर
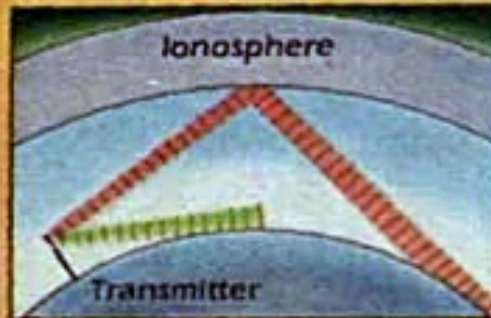
वापस टकरायें।

टेलीफोन द्वारा आप दूर-दूर तक के लोगों को अपनी बात सुना व उनकी सुन सकते हैं। अब वीडियो-टेलीफोन द्वारा बात करने वाले एक दूसरे को देख भी सकते हैं! टेलीफोन के साथ एक वीडियो-कैमरा लगा होता है जो वक्ता की तस्वीर लेता है... और एक वीडियो स्क्रीन भी लगा रहता है जिस पर दूसरे वक्ता (उसके कैमरे द्वारा ली गयी तस्वीर) को देख सकते हैं। शीघ्र ही आप जिसे चाहें– अपनी कुर्सी छोड़े

बिना देख सकते हैं।

10 अप्रैल, 1982 को भारत ने इन्सेट 1 ए भेजा था। इस उपग्रह ने प्रमुख केन्द्रों के रेडियो व टी.वी. कार्यक्रमों को ग्रहण किया और विशाल क्षेत्र में फैले सैकड़ों गावों में उनको दिखाया। किसान भी उन्हीं कार्यक्रमों को देख सके जिन्हें कि बड़े नगरों के रहने वाले देखते हैं। इस वर्ष अगस्त में भारत ने इन्सेट 1 बी छोड़ा है। उस उपग्रह द्वारा साधारण टेलीफोन से ही भारत व अन्य देशों के बीच और शीघ्रता से सम्पर्क किया जा सकेगा।

जीवन बीमा आपके भविष्य को सुरक्षित रखने का सबसे विश्वसनीय तरीका है। इसके बारे में और जानकार हो जाइये।

भारतीय जीवन बीमा निगम

1983 WORLD COMMUNICATIONS YEAR

daCunha/LIC/H2/82 HN

ये हैं विजेता !

चन्दामामा
अपनी विरासत जानिए प्रतियोगिता

"अपनी विरासत जानिए" प्रतियोगिता के परिणाम की घोषणा करते हुए हमें खुशी हो रही है. जीतने का प्रयत्न सचमुच सराहनीय है. विजेताओं को बधाई !

प्रधान पुरस्कार के विजेता :

अनुपम फुकन

उषापूर मोरानहाट, पोस्ट मोरानहाट,
शिबसागर जिला, आसाम-७८५ ६७०

आप पूरे व्यय भुगतान सहित इंडियन पॅनोरमा की सैर शुरू करेंगे. शुभ यात्रा !

द्वितीय पुरस्कार (हिन्दी भाषा में) के विजेता :

राजेश हरशचन्द, जलगांव ■ मनोरमा देवी अग्रवाल, लखनऊ ■ राजेश छापड़िया, कलकत्ता ■ ध्रुवकुमार स्वर्णकार, जमशेदपुर ■ अनुराधा भारतिया, कानपूर ■ कुमारी टी. संगीता, जलपाईगुड़ी ■ वन्दना सिन्हा, पटना ■ समीक्षा चन्द्राकर, कोल्हापुर ■ शालिनी गोसाई, जलंधर ■ रमा पाटनी, झुमरी तिलैया.

इनके अतिरिक्त तृतीय प्रोत्साहन पुरस्कार तथा स्पॉट पुरस्कार के २७०० विजेता हैं. अगर आपने कोई पुरस्कार जीता है तो हम व्यक्तिगत रूप से डाक द्वारा पत्र व्यवहार करेंगे. इससे आपको हमारे घोषित पुरस्कारों में से अपनी इच्छानुसार पुरस्कार चुनने का अवसर मिलेगा.

यह एक पूर्ण सफल प्रतियोगिता रही है. इसमें भाग लेनेवालों को हार्दिक धन्यवाद !

जो इस बार पुरस्कार न जीत सके उन्हें निराश होने की जरूरत नहीं. दूसरा अवसर फिर मिलेगा !

पुरस्कार जीतिए

कॅमल

पहला इनाम (१) रु. १५/-
दूसरा इनाम (३) रु. १०/-
तीसरा इनाम (१०) रु. ५/-
१० प्रमाणपत्र

इस प्रतियोगिता में १२ वर्ष की उम्र तक के बच्चे ही भाग ले सकते हैं. ऊपर दिये हुए चित्र में पूरे तौर से कॅमल कलर्स रंग भरिए और उसे निम्नलिखित पते पर भेज दीजिये :

चंदामामा, पो. बॉ. नं. ६६२८, कुलाबा, बम्बई ४०० ००५.

जजों का निर्णय अंतिम और सभी के लिए मान्य होगा. इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया जायेगा.

कृपया कूपन केवल अंग्रेजी में भरिए.

Name: .... Age: ....

Address: ....

....

प्रवेशिकाएं 30-11-1983 से पहले पहले भेजी जायें.

CONTEST NO 33

Vision/CPL 83143 HIN

निःशुल्क रेखा के साथ काटिये

Results of Chandamama Camlin Colouring Contest No.31 (Hindi)

1st Prize: Master Suriyanarayan Kar, Bhubaneswar. *2nd Prize:* Lakhan Singh, New Delhi-110 023. Sushma, New Delhi-110 003, Ravina Ray, Rae Bareilly. *3rd Prize* Ku. Yogita Dewangan, Rajnandgaon. Sangeeta Viz. Bombay-400 058. Sangeeta G. Gogia, Bombay-24. Rajesh L. Maladkar, Bombay-400 064. Sanjay Gaur, Kanpur. Ku. Jyoti Narayan Atgur, Akola-444 001. Gaurav Sharma, K.V. Chabua-786 102. Ku. Pritha Biswas, Bilaspur. Mohd Farid, Sitapur. Afroz Alam, Balasore.

छूट के छुट्टी आज मनाएं
हवा में जॅम्स की गेंद उड़ाएं
जॅम्स दिखा लहरों को बुलाएं
जॅम्स सभी फिर मिलजुल खाएं

कॅडबरिज़
चॉकलेट्स
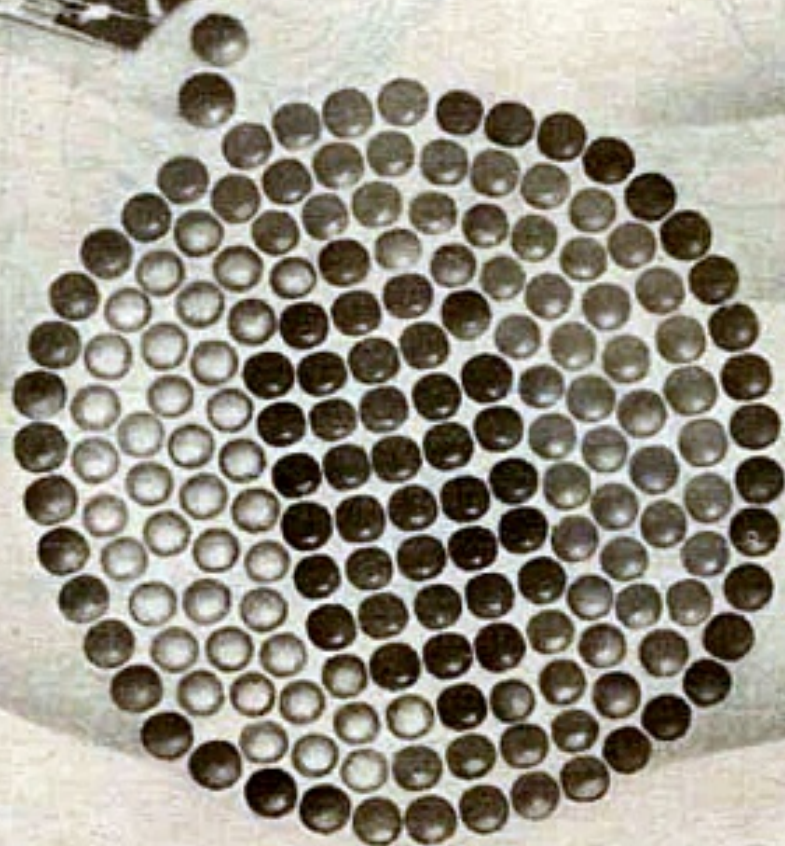
कॅडबरिज़ जॅम्स हैं ही ऐसे; मीठे मीठे सपनों जैसे!

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'

संचालक : नागिरेड्डी

अपने आशीर्वाद से दूसरों को माला माल बना देने वाले सिद्ध पुरुष स्वयं दो रोटी के लिए दूसरों के मुँहताज क्यों रहते हैं ? यह सन्देह प्रायः हम सब के मन में उठता है। इस अंक की कहानी 'परमार्थ विद्या' को यदि ध्यान से पढ़ें तो आप का सन्देह निस्सन्देह दूर हो जायेगा।

स्वप्न क्या मात्र स्वप्न हैं ? या वास्तविक जीवन को मोड़ देने में उनका भी कोई हाथ है ? इसका उत्तर जानना हो तो इस महीने बेताल से मिलिए।

अमर वाणी

नीचे नालप तया दृष्टो, स्वधिको न विचारयेत्।
दर्पणे सर्वतो स्थलपे, दृश्यते लघुवत्खलु ॥

[नीच व्यक्ति यदि उत्तम व्यक्ति का अपमान कर बैठता है तो उत्तम व्यक्ति को दुखी नहीं होना चाहिये क्योंकि विशाल पर्वत भी छोटे से दर्पण में छोटा ही दिखाई देता है।]

वर्षः ३६ नवंबर १९८३ अंकः ३

एक प्रतिः २-५० :: वार्षिक चन्दाः २४-००

चन्दामामा विशेष संवाद

सौरमण्डल में एक अतिथि

खगोल-वैज्ञानिकों को सन्देह है कि हमारे सौर-मण्डल में शायद एक नया ग्रह प्रवेश कर गया है। निरीक्षण से पता चला है कि 'नैपच्यून' और 'यूरेनस' अपनी नियमित गति से थोड़ा-सा हट गये हैं। "एक रहस्यमय पदार्थ-एक ग्रह अथवा शायद एक 'भूरा बौना' उन्हें नीयत पथ से थोड़ा अलग धकेल रहा है।" यह खबर अमेरिका के 'साइंस डाइजेस्ट' में प्रकाशित की गई है।

बावलिंग में नया रिकार्ड

रूसी पत्रिका 'द न्यू टाइम्स' में प्रकाशित खबर के अनुसार अमेरिका के सेना सर्जेण्ट श्री जेम्स हाटमन ने हर घण्टे पाँच मिनट के अवकाश के साथ एक सौ छप्पन छण्टे बीस मिनट तक बावलिंग करके नया विश्व रिकार्ड बनाया है। पिछला विश्व रिकार्ड एक सौ पचपन घण्टे चार मिनट का था।

वृक्ष पर घर

हाल में अर्जेन्टाइना में आयी बाढ़ के दरम्यान एक दम्पति को दो महीनों तक एक पेड़ पर रहना पड़ा। उन्होंने शाखाओं पर एक झोंपड़ी बना ली। पेड़ से बंधी एक छोटी-सी ढोंगी को उन्होंने रसोई घर बना लिया। शाखाओं पर बैठ कर उन्होंने मछली के शिकार का भी आनन्द लिया।

क्या आप जानते हैं ?

१. भारत में सर्वप्रथम दल बाँध कर आनेवाले विदेशी कौन थे और वे कब आये ?
२. हमारे देश में पहली बार कदम रखनेवाला इटली का यात्री कौन था ?
३. हमारे देश में रूस से पर्यटन करने के उद्धेश्य से आनेवाला पहला यात्री कौन था ?
४. भारत में आनेवाला पहला पुर्तगाली यात्री कौन था ?
५. मत्स्य देश के नाम से हमारे देश का कौन सा क्षेत्र जाना जाता है ?

उत्तर पृष्ठ ८० पर
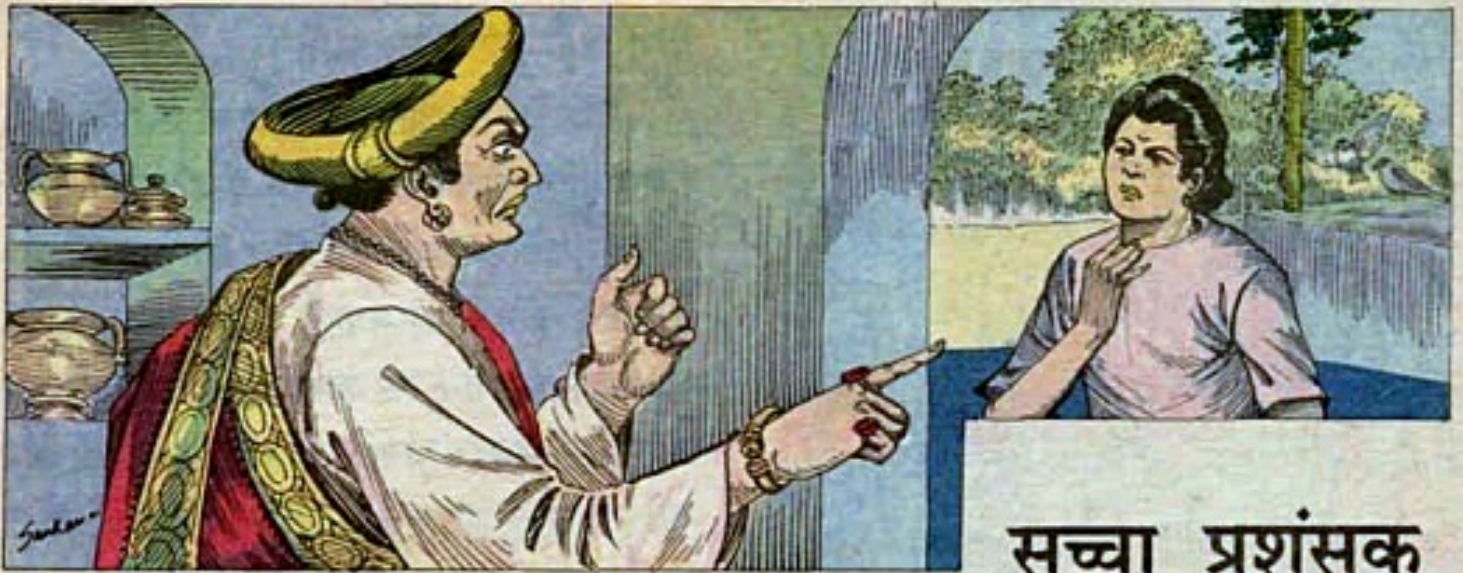
सच्चा प्रशंसक

महाकवि श्रीकान्त का नाम दूर-दूर तक फैला हुआ था। जो भी उनकी कविता सुनता, वाह-वाह कर उठता। सभी उनकी कविता की प्रशंसा करते। लोगों में चर्चा थी कि उनके मुँह से निकली हुई हर बात कविता होती है। इसलिए बहुत लोग उनसे कुछ बातचीत करने अथवा उनके मुँह से कुछ सुनने के लिए लालायित रहते।

परन्तु श्रीकान्त स्वभाव से बहुत घमण्डी थे। उनसे मिलने के लिए लोगों को बहुत इन्तज़ार करना पड़ता। और इसके बावजूद, वे मिलनेवालों से झिड़क कर बातें करते। साधारण लोगों से मिलने में वे अपना अपमान मानते थे।

राजधानी से कुछ दूर एक गाँव में कनक भूषण नाम का एक ब्राह्मण युवक रहता था। श्रीकान्त की कविताओंका वह बहुत बड़ा प्रशंसक था। इसलिए जब भी वह महाकवि की निन्दा सुनता तो उसका दिल कचोट जाता। उसे इस बात पर विश्वास करने का जी नहीं होता कि महाकवि इतने अहंकारी हो सकते हैं। वह स्वयं इस बात की जाँच के लिए महाकवि से मिलने एक दिन राजधानी पहुँच गया।

जब वह महाकवि के घर पर गया तो उसे बता दिया गया कि वे घर पर नहीं हैं, यद्यपि वे उस समय घर पर ही थे। दूसरे दिन वह फिर श्रीकान्त से मिलने गया, लेकिन वे काव्य-रचना में इतने डूबे थे कि मिलने से इनकार कर दिया। तीसरे दिन काव्य-पाठ के अभ्यास में ऐसे मस्त थे कि किसी को उनका ध्यान भंग करने का साहस नहीं हुआ। चौथे दिन कनक भूषण को उनके दर्शन का सौभाग्य मिला।

लेकिन मिलते ही सपाट शब्दों में महाकवि श्रीकान्त ने कहा- "तुम जैसे लोगों से बातचीत करने के लिए समय नहीं है। शीघ्र बताओ, तुम्हें क्या चाहिए।
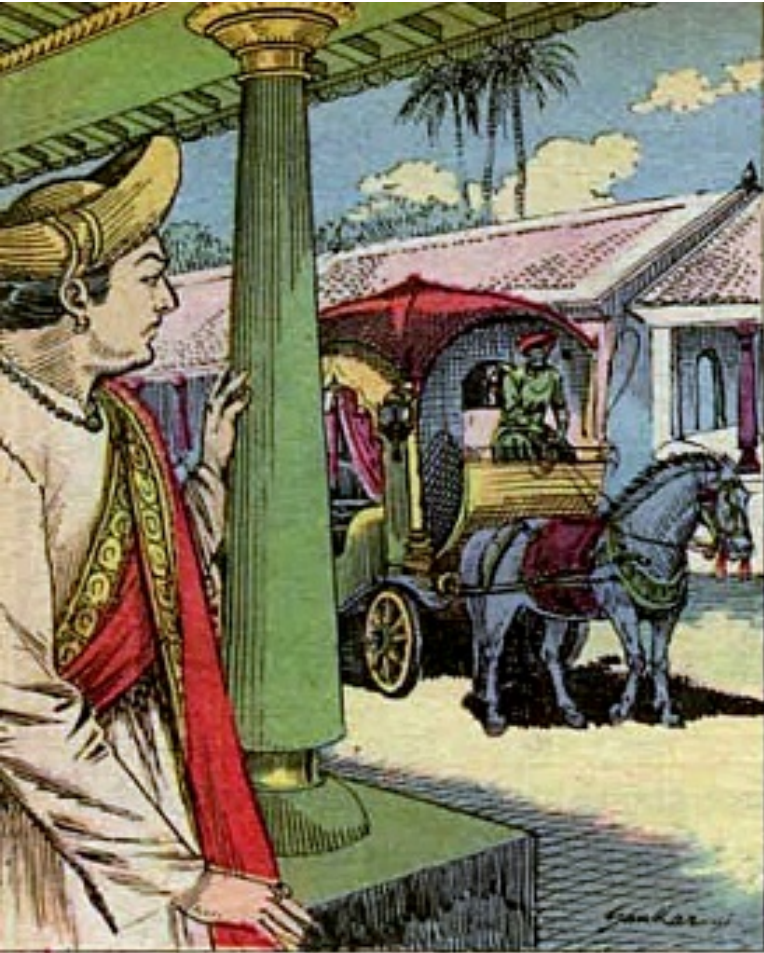
"आप की कविता से मैं बहुत प्रभावित हूँ। आप का प्रशंसक हूँ। आप के दर्शन के लिए अपनी साल भर की एकत्र पूँजी खर्च करके यहाँ तक आया हूँ।" कनक भूषण ने बड़े आदर के साथ कहा ।

श्रीकान्त ने झिड़कते हुए कहा- "मेरे पास ऐसे फालतू काम के लिए समय नहीं है, तुम जा सकते हो ।"

कनक भूषण निराश, उदास, अपना-सा मुँह लेकर लौट आया ।

दूसरे हफ्ते श्रीकान्त के गाँव से खबर आई कि उनके बड़े भाई बीमार हैं और उन्हें तुरन्त वहाँ जाना चाहिए । उन्होंने राजा से अनुरोध करके एक घोड़ागाड़ी मँगवाई और गाँव के लिए चल पड़े ।

थोड़ी दूर की यात्रा के बाद घोड़ा अचानक गिर पड़ा। कोचवान ने घोड़े की जाँच-पड़ताल करके बताया- "क्षमा कीजियेगा श्रीमान ! घोड़ा अचानक बीमार पड़ गया है। इसके स्वस्थ होने में समय लगेगा। इसे अभी थोड़ी देर के लिए आराम की सख्त जरूरत है। यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर एक सराय है । आप वहाँ चल कर विश्राम करें। हम कुछ ही देर में गाड़ी लेकर आते हैं ।"

लाचार हो श्रीकान्त पैदल ही चल पड़े । कोचवान का अनुमान गलत निकला । सराय वहाँ से काफी दूर था । ये चलते-चलते थक गये। चेहरे और बाल पर धूल छा गई। कपड़े मैले हो गये । हाँफते-हाँफते मैले-कुचैले-से सराय में पहुँचे ।

सराय के मालिक ने उपेक्षा से कहा— "कमरा कोई खाली नहीं है। दालान में चटाई पर विश्राम कर सकते हो ।"

श्रीकान्त ने अपमानित अनुभव किया । इसलिए क्रोध में बोले- "तुम जानते नहीं हो, मैं महाकवि राजकवि श्रीकान्त हूँ। क्या मैं दालान में विश्राम करूँगा ? मेरे लिए जल्दी ही एक कमरे का प्रबन्ध करो ।"

श्रीकान्त की बातें सुन कर सराय का मालिक खिल खिलाकर हँस पड़ा। श्रीकान्त का क्रोध और भड़क उठा । उन्होंने कड़क कर

पूछा- "हसँते क्यों हो ? क्या तुमने मेरा नाम सुना नहीं ?"

"मैंने तुम्हारी बात अच्छी तरह सुनी, तभी तो हसँता हूँ। दुर्भाग्य या सौभाग्य से महाकवि श्रीकान्त आज यहीं ठहरे हुए हैं, नहीं तो तुम्हारे झूठे रोब में आ भी जाता।" सराय के मालिक ने उस पर सन्देह करते हुए कहा।

इस बात पर श्रीकान्त को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका नाम बता कर कौन लोगों को धोखा दे रहा है। उन्होंने जिज्ञासा से पूछा- "कौन है दूसरा श्रीकान्त ? दिखाओ तो !"

"वे दायें बाजू के कमरे में ठहरे हुए हैं और इस समय कवि गोष्ठी कर रहे हैं। यदि तुम महाकवि को देखना चाहते हो तो चुपचाप देख कर आ जाओ और हंगामा पैदा न करो, नहीं तो तुम्हें पागल समझ कर पकड़ लिया जायेगा।" सराय के मालिक ने चेतावनी देते हुए कहा।

धीरे से उस कमरे के पास जाकर खिड़की से झाँका और अन्दर का दृश्य देख कर वह देखता ही रह गया। एक युवक उन्हीं की तरह वेश बना कर बड़ी मधुरता से कविता पढ़ रहा था। उसके चारों ओर उसके प्रशंसक बैठे थे। उन के प्रश्नों के उत्तर भी वह धीरज और प्रेम से दे रहा था।

बहुत ध्यान से देखने पर पता चला कि वह युवक वही था जो हफ्ता पहले उनसे मिलने के लिए आया था- कनक भूषण।

श्रीकान्त को उस युवक पर बहुत क्रोध आ रहा था। तभी गोष्ठी खत्म हो गई और सभी लोगों ने उस युवक को बड़े आदर के साथ प्रणाम करके विदा ली। श्रीकान्त गुस्से में तम तमाते हुए कमरे में घुसे और युवक पर गरजते हुए बोले- "तुम मेरा स्वांग बना कर लोगों को धोखा क्यों देते हो ? तुम्हें इस अपराध-में बन्दी बनाकर दण्ड दिया जायेगा।"

कनक भूषण को, महाकवि को अचानक मैले-कुचैले वस्त्र में देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने श्रद्धापूर्वक महाकवि को प्रणाम किया और नम्रता पूर्वक उत्तर देते हुए कहा- "मैं इस व्यवहार के लिए क्षमा चाहता हूँ कि आप की आज्ञा के बिना मैंने आप का स्वांग

किया है। लेकिन इसके पीछे मेरा कोई नीच उद्देश्य नहीं है।"

श्रीकान्त गुस्से में कुछ और कहना ही चाहते थे कि कनक भूषण ने पुनः अनुरोध किया- "मेरी बात शान्तिपूर्वक पहले सुन लें श्रीमान ! फिर जो चाहें आप दण्ड दे सकते हैं।

"यह निर्णय मैंने आप से मिलने के बाद ही लिया है। और आप के भी दर्शन की इच्छा इसलिए विशेष रूप से हुई कि आप की निन्दा मैं सहन नहीं कर सका। आप की प्रतिभा और कविता के लिए जहाँ एक ओर आप की सर्वत्र प्रशंसा होती है, वहीं दूसरी ओर आप की कठोरता, क्रोध और अहंकार के लिए बड़ी निन्दा भी होती है। मैं आप की कविताओं का प्रशंसक हूँ, इसलिए आप की कोई भी निंदा सहन नहीं कर पाता। इसलिए सच्चाई जानने के लिए मैं स्वयं आप के दर्शन करने राजधानी पहुँचा और मुझे यह जान कर बहुत दुखं हुआ कि लोग ठीक ही कहते हैं।

"लोगों के मन में आप के प्रति आदर का भाव उत्पन्न करने के लिए ही मैंने आप का स्वांग रचा है। मैं लोगों को आप की कविताओं का पाठ सुनाता हूँ और प्रेम तथा विनय पूर्वक उनकी बातें सुन कर उन्हें सन्तुष्ट करता हूँ। और जो गुण आप के स्वभाव में नहीं है, उसका अभिनय कर आप के यश में चार चाँद लगा रहा हूँ। इस प्रकार आप की काव्य प्रतिभा और मधुर वाणी दोनों के लिए आप की प्रशंसा होती है। बहुत से ऐसे लोग हैं जिन्हें आप के दर्शन का सौभाग्य जीवन भर नहीं मिलेगा और उनके मन में आप केलिए एक सुन्दर छवि बनी रहेगी। मुझे यह देख कर हार्दिक खुशी होती है।"

ऐसे प्रशंसक को पाकर श्रीकांत का कवि-हृदय बाग-बाग हो उठा और उन्होंने कनक भूषण को गले लगाते हुए कहा- "तुम मेरे केवल प्रशंसक ही नहीं हो, मार्गदर्शक भी हो। ऐसे प्रशंसक को मैंने पहचानने में भूल की, इसके लिए मैं लज्जित हूँ। तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। शायद अब तुम्हें यह नाटक करने की जरूरत न पड़े।"

तीन मांत्रिक

६

[पद्मपाद और पिंगल भल्लूक पर्वतों की घाटी में बहने वाली नदी तक पहुँच गये। नदी का जल सुखाने के लिए पद्मपाद ध्यान में बैठ कर मंत्र का जाप करने लगे और पिंगल गदा लेकर राक्षसों से उनकी रक्षा करने के लिए पहरा देने लगा। थोड़ी देर में नदी का जल सूखने लगा और नदी के केंद्र में एक मन्दिर के खंडहर का मस्तूल दिखाई पड़ा। इसके बाद...]

ध्यान टूटने पर पद्मपाद ने मन्दिर के शिखर की ओर बड़े गौर से देखा। मन्दिर के एक ओर महामाय के दोनों शिष्य खड़े थे। पद्मपाद ने उन दोनों को हाथ के संकेत से बुलाया। उन दोनों ने निकट आकर पद्मपाद को झुक कर प्रणाम किया।

"तुम दोनों ने मेरे आदेश का पालन किया है। इस पर मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। फिलहाल, जहाँ जाना चाहते हो, जा सकते हो।" पद्मपाद ने कहा।

महामाय के शिष्य आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगे।

"महामांत्रिक! आप के आदेश का हमने पालन कर, आपने जो सहायता माँगी थी, उसे पूरी कर दी है। अब कृपया हम दोनों को मंत्र से मुक्त कर दीजिए।" एक शिष्य ने साहस करके

अनुरोध किया ।

इस पर पद्मपाद हँसते हुए बोले- "जब तक मेरा काम पूरा नहीं होता, तब तक तुम दोनों को मंत्र के प्रभाव से कैसे मुक्त कर सकता हूँ ! मैं जानता हूँ, तुम लोग साधारण पिशाचों में नहीं हो । जब तक तुम्हारे गुरु की समाधि से आवश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं कर लेता, तब तक तुम्हारी मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता ।"

यह सुनते ही महामाय के शिष्यों के चेहरे पीले पड़ गये । वे दोनों पद्मपाद के चरणों में गिर कर बोले- "महामांत्रिक ! हम आप के दास हैं । जब से आपने हमें अपने मंत्र के वश में किया है, तब से हमें खाना नहीं मिला है । इसलिए हम बड़े दुर्बल हो गये हैं ।" इतना कह कर वे दोनों रोने लगे ।

इन्हें रोते देख कर पिंगल के मन में दया उमड़ आयी । वह पद्मपाद को कुछ कहने ही जा रहा था कि बीच में पद्मपाद ने शिष्यों से कहा— "मैं जानता हूँ कि तुम दोनों आज तक निराहार हो, लेकिन जैसे ही तुम मुक्त होगे, तुम मेरा ही शिकार कर बैठोगे !"

"आप जैसे महामांत्रिक का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता ।" यह कह कर वे दोनों बड़े दीन भाव से गिड़गिड़ाने लगे ।

इस पर पद्मपाद हँसते हुए पिंगल के हाथ से गदा लेकर बोले— "मनुष्य को छोड़ कर तुमलोग किसी भी प्राणी को मार कर खा सकते हो । बताओ, किस प्रकार का रूप धारण करना पसन्द करोगे ?"

बीच में सुझाव देते हुए पिंगल ने कहा— "पद्मपाद ! इन्हें हाथी का रूप दे दो । इस रूप में ये निर्भय होकर जंगल में घूम सकते हैं ।"

"हाथी का रूप ! नहीं महामांत्रिक !" एक स्वर में दोनों शिष्य चिल्ला उठे ।

"हाथी के रूप में तो कंद मूल ही खाना पड़ेगा । मांस का भोजन नसीब नहीं होगा । शाकाहार तो हमारे शरीर के लिए विष के

समान है ।"

"तब तो मैं तुम में से एक को सिंह का रूप देता हूँ।" इतना कहते हुए पद्मपाद ने एक शिष्य के सिर पर गदा का प्रहार किया। दूसरे ही क्षण वह सिंह के रूप में बदल गया ।

"और दूसरे को बाघ का रूप..." इतना कह कर दूसरे शिष्य के सिर पर भी पद्मपाद ने गदा चलाया ।

सिंह और बाघ दोनों की पीठ पर हाथ फेरते हुए पद्मपाद ने पूर्व दिशा की संकेत करके कहा- "तुम लोग उस जंगल में चले जाओ, वहाँ मांसाहार की कमी नहीं रहेगी ।"

पद्मपाद का संकेत पाकर दोनों पशु भयंकर गर्जना करते हुए जंगल की ओर दौड़ पड़े ।

"ये किसी प्रकार से अब हमें तो हानि नहीं पहुँचा सकते न, पद्मपाद !" सन्देह करते हुए पिंगल ने पूछा ।

"ये किसी मनुष्य को हानि नहीं पहुँचा सकते। फिर, ये तो अभी मेरे मंत्र के वश में हैं। इसलिए तुम्हें इनसे डरने का कोई कारण नहीं है ।

पद्मपाद थोड़ी देर तक उन पशुधारी महामाय के शिष्यों की ओर देखते रहे, फिर पिंगल से बोले- "पिंगल ! जैसे-जैसे हम लक्ष्य के निकट पहुँच रहे हैं, वैसे वैसे हमें और भी सावधान रहने की आवश्यकता है । हमारे प्रयत्न को विफल करने के साथ-साथ हमारे प्राण लेने के लिए भी हमारे शत्रु चप्पे-चप्पे पर मुँह बाये खड़े हैं। सच पूछो तो हमलोगों की पिछली यात्रा बहुत आसान थी। खतरों का दौर तो अब शुरू होनेवाला है। अब हर कदम पर हमलोगों का स्वागत खुद मौत करेगी। मंजिल पर पहुँचने के लिए केवल दो ही साथी हमारी सहायता कर सकते हैं— वे हैं साहस और सावधानी। यदि भय की हल्की-सी लहर भी आयी या थोड़ी-भी ढील हुई कि हम मौत के सिकंजे में होंगे और मंजिल ख्वाब बन कर रह जायेगी। और इस खतरनाक यात्रा में सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी

तुम्हें निभानी है । इसलिए जरूरी है कि तुम हिम्मत में हिमालय की तरह अडिग बने रहो और सावधानी में शिकारी की तरह सतर्क । फिर शत्रु चाहें कितने भी चालाक और खतरनाक हों, हमारा बाल भी बांका नहीं कर सकते । चलो चलें, सावधानी से हम अपने काम में जुट जायें ।''

थोड़ी देर रुक कर पिंगल को सम्बोधित करते हुए उसने फिर कहा- ''उस टूटे मन्दिर का शिखर तुम्हें दिखाई दे रहा है न ?''

पिंगल ने सिर हिला कर कहा- ''हाँ''

''तो सुनो ! अब तुम्हें उस मन्दिर में स्थित महामाय की समाधि तक पहुँचना होगा । समाधि में प्रवेश करने के पूर्व तुम्हें छः दरवाज़ों को पार करना होगा । उन द्वारों की रक्षा के लिए बड़े भयंकर राक्षस तैनात खड़े रहते हैं । वे सभी तुम्हारी हत्या करने का प्रयत्न करेंगे । तुम्हारी रक्षा का सबसे बड़ा कवच होगा— तुम्हारी निडरता । उन्हें देख कर यदि तुम ज़रा भी भयभीत हो गये तो न केवल हम लक्ष्य को सदा-सदा के लिए खो देंगे, बल्कि अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठेंगे ।'' पद्मपाद ने पिंगल को समझाते हुए कहा ।

पिंगल की नज़र मंदिर के शिखर पर जमी थी और उसके कान पद्मपाद की ओर लगे थे ।

पद्मपाद चलने को तैयार होते हुए बोले- ''पिंगल ! चलो, अब हम मन्दिर के पास चलें । पहले द्वार तक मैं तुम्हें छोड़ आऊँ । उस द्वार को खोल दोगे तो शेष पाँचों द्वारों को खोल कर महामाय की समाधि तक पहुँचना आसान हो जायेगा ।''

पद्मपाद और पिंगल दोनों चल कर नदी के बीचो बीच स्थित मन्दिर के निकट पहुँचे ।

मन्दिर का पहला द्वार बहुत डरावना था । साल की लकड़ी से बने किवाड़ों पर भयंकर चेहरे बने हुए थे । दोनों किवाड़ों पर लगी दो बड़ी-बड़ी कीलों से लिपटा हुआ एक विशाल नाग फुफकार रहा था ।

पद्मपाद उस सर्प की ओर इशारा करते हुए बोले- "पिंगल ! तुम निडर होकर उस सर्प को दो बार स्पर्श करो । डरो नहीं । इसके बाद द्वार के भीतर से एक डरावना चेहरा तुमसे कोई सवाल पूछेगा । बिना किसी भय के तुम अपना परिचय दे देना । तुम्हारा नाम सुनते ही द्वार अपने आप खुल जायेगा ।"

इतना कह कर पद्मपाद मौन हो गये ।

"इसके बाद हमें क्या करना होगा ?" पिंगल ने उत्सुकता के साथ पूछा ।

"इसके बाद क्या होगा, यह बताने पर मेरी मंत्रशक्ति खत्म हो जायेगी । इसलिए तुम्हें स्वयं ही तय करना होगा कि किस घटना का कैसे मुकाबला किया जाये । लेकिन याद रखो, यदि हर हालत में निडर बने रहो तो हर मुश्किल आसान हो जायेगी और तुम्हारा रास्ता साफ होता चला जायेगा । तुम्हें याद है न ? अदम्य साहस और अटूट जागरुकता, ये ही दो तुम्हारे खतरनाक रास्ते के साथी होंगे । जब तक ये तुम्हारे साथ रहेंगे, हर बाधा झुक जायेगी और हर खतरा टल जायेगा । मेरा पूरा विश्वास है इस यात्रा में तुम सफल होकर लौटोगे । मन्दिर के भीतर की अजीबोगरीब चीजों के बारे में तुम जानते ही हो ।" पद्मपाद ने पिंगल का उत्साह बढ़ाते हुए कहा ।

पिंगल ने साहस के साथ कहा—"पद्मपाद ! मैं किसी भयंकर और डरावनी आकृति से डरनेवाला नहीं हूँ । लेकिन छल करने वाली कोई मायावी दुष्ट शक्ति तो वहाँ नहीं है न ?"

"बिना छल-कपट के ही वे शक्तियाँ तुम्हें नष्ट कर सकती हैं । लेकिन यदि हर स्थिति में निडर बने रहो तो वे शक्तियाँ तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकतीं । तुम्हारी निडरता हर हालत में बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है । जब तुम महामाय की समाधि से मेरी मनोवांछित वस्तुएं ले आओगे तब तुमसे बड़ा धनी और शक्तिशाली व्यक्ति इस धरती पर कोई न होगा । उन अद्भुत वस्तुओं में इतनी शक्ति है कि

मनुष्य की सारी कामनाएं पूरी हो सकती हैं। वह चाहे तो अनन्त काल तक सारे विश्व पर शासन कर सकता है और पूरी पृथ्वी को अपनी मुट्ठी में रख सकता है।" पद्मपाद ने पिंगल का हौसला बढ़ाते हुए कहा।

"तभी तो इन सारे खतरों का मुकाबला करने को तैयार खड़ा हूँ।" यह कहते हुए पिंगल मन्दिर के पहले द्वार की ओर बढ़ा।

पद्मपाद अपने स्थान पर लौट आया।

पिंगल जैसे ही द्वार के पास आया नाग अपना फण फैला कर फुफकारने लगा। पिंगलने बिना किसी डर के अपने दायें हाथ से उस भयावने नाग का दो बार स्पर्श किया। इसके छूते ही उसकी फुफकार बन्द हो गयी और उसने अपना फण झुका लिया। लेकिन तभी किवाड़ के अन्दर से घोर गर्जन हुआ और एक डरावनी आवाज ने सवाल किया- "भीतर प्रवेश करने की जानकारी के बिना महामाय की समाधि के प्रथम द्वार तक आने वाला कायर कौन है ?"

पिंगल ने निर्भय होकर उत्तर दिया— "मेरा नाम पिंगल है। मैं अवन्ती नगर का मछुआरा हूँ। मेरे गुरु पद्मपाद हैं।"

"बस करो। तुम्हारा गुरु कोई भी हो। तुम मत्स्याकार पिंगल हो तो लो अभी द्वार खोल देता हूँ।" फिर वही आवाज आयी। तभी घोर गर्जना के साथ किवाड़ खुल गये और हाथ में चमकती हुई नंगी तलवार लिए काले रंग का एक विशाल काय व्यक्ति द्वार के साथ खड़ा हो गया।

पिंगल द्वार के अन्दर प्रवेश कर गया।

तलवार की सीध में जैसे ही पिंगल आया, उस पर्वताकार व्यक्ति ने सवाल करते हुए कहा- "यदि तुम मत्स्याकार पिंगल हो तो अपनी गर्दन आगे बढ़ा दो। एक ही झटके में तुम्हारी गर्दन धड़ से अलग कर दूँगा।"

पिंगल ने क्षण भर में ही निर्णय कर लिया कि चाहे प्राण चले जायें, वापस नहीं मुड़ना है।

उसने तुरत निर्भय होकर अपनी गर्दन झुका दी। तभी मौत से भी अधिक भयावनी तलवार उस व्यक्ति के हाथ से नीचे गिर पड़ी और वह व्यक्ति भी पिंगल के सामने कटे हुए वृक्ष के समान निढाल हो गिर पड़ा ।

इस घटना से पिंगल को अपने भीतर अपार बल और पराक्रम का अनुभव हुआ। वह प्रथम द्वार को पार करते ही दूसरे द्वार की ओर बढ़ा। उस द्वार के किवाड़ भी बंधे हुए थे। एक त्रिशूल-धारी घुड़सवार उस द्वार का रक्षक था। उसने पिंगल को अपनी ओर आते देख उस पर त्रिशूल का निशाना साध दिया ।

पिंगल ने निर्भय होकर कहा— "जानते हो मैं मत्स्याकार पिंगल हूँ। मुझे जाने दो।" यह कह कर वह आगे बढ़ गया। तभी यह देख कर पिंगल को बड़ा आश्चर्य हुआ कि घोड़े के साथ त्रिशूलधारी घुड़सवार धड़ाम से गिर कर पृथ्वी में धँस गया और किवाड़ अपने आप खुल गये। पिंगल का साहस और बढ़ गया और वह दूसरे द्वार को पार कर तीसरे द्वार की ओर बढ़ा।

तीसरे द्वार पर एक धनुर्धारी पिंगल की ओर तीर का निशाना साधे खड़ा था। पिंगल ने आगे बढ़ते हुए धनुर्धारी को उंगली से अपना ललाट स्पर्श कर संकेत से कुछ बताया। धनुर्धारी भीषण ध्वनि के साथ वहीं पर गिर कर ढेर हो गया। तीसरे द्वार के किवाड़ खुलते ही पिंगल उसमें प्रवेश कर गया और तेजी से चौथे द्वार की ओर बढ़ा ।

चौथे द्वार पर दो गैंडे भीषण गर्जन कर रहे थे। पिंगल जैसे ही वहाँ पहुँचा, गैंडों ने उस पर एक साथ आक्रमण कर दिया। पिंगल बिना घबराये आगे बढ़ता गया और साहस पूर्वक उन दोनों गैंडों का स्पर्श किया। इसके छूते ही दोनों गैन्डे धू-धू कर जल उठे और भस्म हो गये। उनके जलते ही चौथे द्वार के किवाड़ भी खुल गये और पिंगल ने इसे भी पार कर लिया।

अब पिंगल पाँचवें द्वार पर था। इस द्वार का रक्षक एक विचित्र प्राणी था। इसके शरीर का

पिछला हिस्सा सिंह का था और आगे का हिस्सा गरुड़ का। पिंगल को इस प्राणी को देख कर बहुत आश्चर्य हो रहा था। तभी उसने पिंगल पर आक्रमण करने के लिए अपने पंख फड़फड़ाये।

पिंगल निडर होकर गरजता हुआ बोला— "मैं मत्स्याकार पिंगल हूँ। मेरे रास्ते से हट जाओ।" यह कह कर वह आगे बढ़ गया।

गरुड़-सिंह कई टुकड़ों में होकर इधर-उधर बिखर गया और द्वार के कपाट खुल गये। पिंगल ने पाँचवें द्वार को भी पार कर लिया। अब वह छठे द्वार की ओर बढ़ने लगा।

अब उसे अन्तिम द्वार पार करना था। इसके बाद ही वह महामाय की समाधि में प्रवेश करेगा, जहाँ से उसे अंगूठी, वज्रखचित छुरी तथा भूगोल जैसी दुर्लभ वस्तुएं मिलने वाली हैं। यह विचार आते ही वह खुशी से झूम उठा और नये उत्साह और जोश के साथ छठे द्वार पर आ पहुँचा।

छठे द्वार पर आते ही वह भौचक्का सा हो गया। द्वार के बगल में पद्मपाद स्वयं हाथ में गदा लिए पहरा दे रहे थे। पिंगल स्वयं पद्मपाद को वहाँ देख कर थोड़ा घबरा-सा गया। फिर भी, हिम्मत करके किसी प्रकार आगे बढ़ने लगा। तभी एक भयंकर आवाज आयी- "कौन हो तुम ? रुक जाओ।"

पिंगल ने सोचा— "शायद किसी पिशाच ने मुझे धोखा देने के लिए ही पद्मपाद का रूप धारण कर लिया है।"

गदा की चमक से उसकी आँखें चुंधिया गयीं और भय से उसके कदम पीछे हट गये।

तभी उसके कानों में ये कठोर शब्द गूंज उठे- "यह कोई चोर है, मत्स्याकार पिंगल नहीं। इसको बाहर खदेड़ दो।"

दूसरे ही क्षण उसकी पीठ और सिर पर तड़ातड़ लाठियाँ बरसने लगीं। सारे द्वार एक-एक करके बन्द हो गये। पिंगल भय से काँपने लगा।

उसे अचानक ऐसा लगा जैसे वह आकाश से नीचे गिर रहा है और पृथ्वी पर उसे गिरने से बचाने के लिए पद्मपाद खड़ा है।

(—क्रमशः)

सही निर्णय

धुन के पक्के विक्रम पेड़ के पास फिर लौट आये। पेड़ पर से उन्होंने शव उतारा और अपने कन्धे पर उसे डाल चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे।

शव में स्थित बेताल ने कहा- राजन ! इस भयानक आधी रात में किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इतना परिश्रम कर रहे हैं ? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। आप जैसे अनुभवी और बुद्धिमान व्यक्ति भी कभी-कभी ऐसी हरकत कर बैठते हैं जिस पर हँसी आती है। फिर तो अज्ञानी और मूर्ख की बात ही न पूछिए ! राजा को तो अपने राज्य को अधिक मजबूत व सुखी बनाने की चिन्ता करनी चाहिए। उसी प्रकार एक व्यापारी को धन कमाने के नये-नये उपायों की खोज करनी चाहिए। वरना राजा को अपने से मजबूत शत्रु से और व्यापारी को अधिक चतुर व्यापारी से बराबर डर बना रहता है।

आप को विश्वास दिलाने के लिए एक ऐसे

व्यापारी की कहानी सुनाता हूँ जो अपने मित्र की सलाह से करोड़ों रुपये कमा सकता था, किन्तु, अपनी मूर्खता के कारण इस मौके से हाथ धो बैठा। कहानी से रास्ते की थकान भी मिट जायेगी।

बेताल इतना कह कर कहानी सुनाने लगा- श्रीगुप्त एक छोटे-से शहर का जौहरी था। उसका एक मित्र था-श्रीकण्ठ। वह राजधानी का एक जाना-माना व्यापारी था। समुद्री व्यापार में उसका कोई मुकाबला न था।

एक बार श्रीकण्ठ अपने मित्र श्रीगुप्त से मिलने आया। बातचीत से उसे पता चला कि उसके मित्र श्रीगुप्त का व्यापार अच्छा चल रहा है, लेकिन समुद्री व्यापार की तरह लाखों-करोड़ों का लाभ नहीं है।

श्रीकण्ठ ने अपनी अपार सम्पत्ति का ब्योरा देते हुए अपने व्यापार की तारीफ की और फिर श्रीगुप्त से कहा- "दोस्त ! साधारण लाभ के लिए तुम्हारा व्यापार बुरा नहीं है, लेकिन इससे आर्थिक अवस्था में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं होने वाला है। हमारे समुद्री व्यापार की बात ही और है ! इसमें एक ही झटके में करोड़ों का लाभ हो सकता है। चाहो तो तुम भी मेरे साथ यह रोजगार कर सकते हो और दस हजार मुद्राओं की पूंजी से आरम्भ कर इसे धीरे-धीरे और बढ़ा सकते हो।"

श्रीगुप्त ने कहा- "सुझाव तो बहुत अच्छा है मित्र ! लेकिन जल्दी में कोई निर्णय नहीं ले सकता। मैं सोच कर फिर बताऊँगा।"

कुछ दिन अपने मित्र के यहाँ बिता कर श्रीकण्ठ अपने नगर में लौट आया। कुछ दिनों के बाद अपने मित्र की सलाह पर अच्छी तरह सोच-समझ कर दस हजार मुद्राएं लेकर श्रीगुप्त श्रीकण्ठ के नगर की ओर चल पड़ा।

दोपहर तक चलते-चलते वह काफी थक गया था। इसलिए रास्ते में आम के एक बाग़ में आराम करने के लिए रुक गया। कुछ खाने-पीने के बाद एक पेड़ की छाया में लेटते ही उसे नींद आ गयी।

नींद में उसने एक विचित्र सपना देखा- वह एक समुद्र के किनारे खड़ा था ! समुद्र में तभी

उसे थोड़ी दूरी पर हीरे, मानिक-मोतियों से लदा सोने का बना एक जहाज़ दिखाई दिया। उस जहाज़ में कोई मनुष्य नज़र नहीं आ रहा था। उसमें लदे हीरे जवाहिरातों की चमक से उसकी आँखें और मन दोनों चकाचौंध हो गये। उस पर अपना अधिकार करने का लालच वह रोक न सका और उसे पकड़ने के लिए समुद्र में कूद पड़ा। जब वह तैरते-तैरते जहाज़ के निकट पहुँचा तो समुद्र से निकल कर भयानक चेहरे वाले एक जन्तु ने उसके पाँव धर दबोचे। श्रीगुप्त ने उससे छुटकारा पाने के लिए बहुत हाथ-पाँव मारा किन्तु सब व्यर्थ! उसने उस भयानक चेहरे से पूछा- "तुम कौन हो और मुझे क्यों जल में डुबाना चाहते हो ?"

उस भयानक चेहरे ने अट्टहास करते हुए कहा- "मैं दरिद्रता की देवी हूँ। मैं बहुत दिनों से तुम्हें अपने चंगुल में फँसाने की कोशिश कर रही थी। आज तुम मेरे हाथ आये हो।"

यह कह कर दरिद्रता की देवी ने उसे जल के अन्दर खींच लिया। बहुत छटपटाने के बाद भी वह जल के ऊपर न आ सका और उसका दम घुटने लगा। तभी उसकी नींद खुल गयी।

भयानक सपने के कारण वह काफी घबरा गया था। उसने तुरन्त उस स्थान को छोड़ दिया और अपने मित्र के नगर की ओर चल पड़ा। राजधानी पहुँचने के पहले ही शाम हो गयी इसलिए एक गाँव की सराय में उसने रात बिताने का निश्चय किया।

रात्रि में नींद नहीं आयी और रात भर वह दिन के विचित्र सपने के बारे में विचार करता रहा। सोचता रहा-क्या यह मेरे दुर्भाग्य का संकेत है या मेरे सन्देहों का प्रकट रूप है ? रात भर सोचते-सोचते अन्त में वह इस नतीजे पर पहुँचा कि यह सपना उसके भाग्य की चेतावनी है और नये व्यापार में करोड़ों के लालच में अपनी रही-सही पूंजी खोकर सचमुच वह दरिद्र बन जायेगा। इसलिए उसे अधिक धन का लालच नहीं करके अपने पुराने व्यापार को ही आगे बढ़ाना चाहिए।

सवेरा होते ही श्रीगुप्त अपने घर की ओर चल पड़ा। लौटते समय दोपहर में वह एक

गाँव के किनारे एक तालाब पर रुका और तालाब के पास ही एक पीपल वृक्ष की छाया में आराम करने के लिए लेट गया । रास्ते की थकान और तालाब का शीतल वातावरण ! उसकी आँख लग गई ।

आश्चर्य की बात है, उसने फिर वही सपना देखा- वही जहाज़, सोने का बना, बहुमूल्य रत्नों से भरा हुआ, चमकता हुआ । उस अपार दौलत का लोभ वह रोक न सका और प्राणों की बाजी लगा कर समुद्र की लपलपाती लहरों में कूद पड़ा । वह तैर कर जितना आगे बढ़ता, जहाज़ और आगे निकल जाता । वह थक कर चूर-चूर हो रहा था लेकिन अपार दौलत की आशा उसके शिथिल अंगों में शक्ति भर रही थी । लेकिन कब तक ? वह इतना थक चुका था कि अब उसे अपने प्राणों की भी आशा नहीं रही थी और वह निष्प्राण हो डूबने लगा था । तभी एक भिन्न बात हुई ।

उसकी आँखों के सामने स्वर्गीय आभा से युक्त एक सुन्दर स्त्री प्रकट हुई और मुस्कुराती हुई बोली- "मैं भाग्य की देवी हूँ । आज तुम बहुत बड़े भाग्य के स्वामी बननेवाले हो । आओ मेरे साथ ।"

इतना कह कर उसने श्रीगुप्त का हाथ स्पर्श किया । पलक झपते ही श्रीगुप्त बिना किसी श्रम के जहाज़ में पहुँच-गये । भाग्य की देवी तभी अदृश्य हो गयी ।

श्रीगुप्त को यह देख कर बड़ी हैरानगी हुई कि जहाज़ में उसी की नगर वाली आभूषण की दुकान थी लेकिन नये-नये बहुमूल्य आभूषणों और रत्नों से भरपूर—पहले से कहीं अधिक विशाल और मूल्यवान । उसकी खुशी का ठिकाना न रहा और आनन्द से पागल हो वह चिल्लाने लगा । तभी उसकी नींद टूट गई ।

इस सपने से वह बहुत प्रसन्न था । उसने उठ कर तालाब पर हाथ मुँह धोया और अपने घर की ओर चल पड़ा ।

बेताल ने यह कहानी सुना कर विक्रम से पूछा- "श्रीगुप्त ने दो भिन्न प्रकार के सपनों के

बारे में एक ही निर्णय क्यों लिया ? सपने में पहले उसे दरिद्र देवी के दर्शन हुए, तब उसने समझा कि समुद्री व्यापार करने से उसे दुर्भाग्य मिलेगा । लेकिन दूसरी बार, भाग्य देवी के दर्शन होने पर भी उसने यही निर्णय लिया । क्या उसकी नज़र में दरिद्रता की देवी और भाग्य की देवी दोनों समान हैं ? उसने न सिर्फ अपने मित्र की उपेक्षा की बल्कि वह बहुत बड़े भाग्य से वंचित भी हो गया । क्या यह उसका मूर्खता पूर्ण आचरण नहीं है ? इस सन्देह का समाधान जानते हुए भी न देंगे तो आप का सर फट जायेगा ।''

विक्रम ने उत्तर देते हुए कहा- ''आशा और लालच की चका चौंध में पड़ कर साधारण मनुष्य अपना सर्वनाश कर लेते हैं, लेकिन विवेक शील व्यक्ति धीरज रखकर उसके दोष-गुण पर विचार करते हैं और उचित निर्णय लेते हैं । यदि श्रीगुप्त में यह विवेक न होता तो वह तुरन्त और बिना विचारे अपने मित्र की सलाह मान लेता और उस पर सोच-विचार के लिए समय न माँगता ।

समुद्री व्यापार में जहाँ लाखों-करोड़ों का लाभ होता है वहाँ लाखों-करोड़ों की हानि भी होती है । श्रीगुप्त ने व्यापार के इस पहलू पर भी अच्छी तरह विचार किया । फिर उसका पहला सपना इसी बात की पूर्व चेतावनी या संकेत था ।

दूसरे सपने में उसकी अपनी ही दुकान अधिक विशाल और शानदार रूप में दिखाई दी । यह सपना भी भावी संकेत के रूप में ही आया । इसका तात्पर्य यह भी था कि उसकी तरक्की उसे परम्परा से प्राप्त व्यापार में ही होगी, क्यों कि उसे उस व्यापार में हाथ डालना खतरे से खाली नहीं है जिसका कोई ज्ञान और अनुभव न हो ।

निश्चय ही श्रीगुप्त के इस निर्णय के पीछे उसके दोनों सपनों का प्रभाव ही था ।''

राजा विक्रम के मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पुनः उसी पेड़पर जा बैठा ।

राजदूत का धर्म

धवलगिरि और हेमगिरि दोनों पड़ोसी राज्य थे। बहुत दिनों से दोनों के बीच सीमा सम्बन्धी कई झगड़े चल रहे थे। उनमें कोई समझौता नहीं हो पा रहा था। धवलगिरि बड़ा और शक्ति शाली राज्य था और किसी भी समय हेमगिरि पर चढ़ाई करके उस पर कब्जा कर सकता था। लेकिन वहाँ के राजा धनंजय ऐसा करना नहीं चाहते थे। ऐसा करने से अन्य पड़ोसी राजाओं को भी भय हो जाता और वे सब हेमगिरि के पक्ष में हो जाते। इसलिए बहुत सोच-समझकर उन्होंने हेमगिरि के राजा हिरण्य वदन को यह सन्देश भेजा-

"हम वार्ता के द्वारा सभी आपसी मत भेदों को सुलझाने के लिए तैयार हैं। यदि इस प्रकार समझौता नहीं हुआ तो लाचार होकर हमें युद्ध करना पड़ेगा। समझौते की हमारी शर्त्तें इस प्रकार हैं..."

हिरण्य वदन के मंत्री महेश्वर ने इस पत्र को पढ़ कर इसे खुलासा करते हुए राजा से कहा-"महाराज ! यह पत्र कूटनीति से भरा हुआ है। समझौते के नाम पर राजा धनंजय अपनी अनुचित शर्त्तें हम पर जबर्दस्ती लादना चाहते हैं। यदि हम ऐसा नहीं कर सके तो हम पर आक्रमण करने का उन्हें बहाना मिल जायेगा।"

"फिर तो यह वार्ता का निमंत्रण धोखा है और राजा धनंजय समझौते का नाटक करके हम सब की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश कर रहे हैं।" राजा हिरण्य वदन क्रोध करते हुए बोले।

"निस्सन्देह उनकी नीयत साफ नहीं है, महाराज ! इतना ही नहीं, इस पत्र में लड़ाई की धमकी भी है।" मंत्री ने कहा।

"तो क्या ऐसी हालत में हमें वार्ता के लिए अपने दूत को राजा धनंजय के पास भेजना चाहिये या नहीं ?" हिरण्य वदन ने चिन्तित

नित्यानन्द

होकर पूछा ।

"वार्ता के लिए हमें दूत अवश्य भेजना चाहिए महाराज ! लेकिन इसके लिए बहुत ही योग्य व्यक्ति को ढूँढ़ना होगा।" मंत्री ने सलाह दी ।

"आप की दृष्टि में हमारे दरबार में ऐसा व्यक्ति कौन है जो इस जिम्मेदारी को अच्छी तरह निभा सके ?" राजा ने मंत्री से पूछा ।

मंत्री महेश्वर ने अपनी राय देते हुए कहा- "हमारे पुरोहित पुष्कर एक चतुर वक्ता हैं । अपनी वाक् चातुरी से बड़े-बड़े विद्वानों और कूटनेताओं पर भी प्रभाव डाल सकते हैं । हमारी राय में उन्हें ही वार्ता के लिए धवलगिरि भेजा जाये ।"

राजा हिरण्य वदन कुछ सोचते हुए बोले- "लेकिन धनंजय के दरबार में भी एक से एक कुशल वक्ता हैं । उनके दरबारी कवि अपूर्व की वाक् चातुरी की कितनी ही कथाएं प्रसिद्ध हो गई हैं । इन दोनों के शब्द-जालों और तर्कों के जादू से समझौते की आशा नहीं की जा सकती ।"

मंत्री थोड़ी देर सोच कर बोले- ऐसी राजनीतिक बातचीत के बारे में यह भी कहा जाता है कि दोनों पक्षों को लेन-देन के मामले में थोड़ा-बहुत उदार होना चाहिए । हमारे नगर का प्रमुख व्यापारी निरंजन राजनीति और व्यवहार में भी कुशल है । इसके बारे में आप का क्या विचार है ?"

"निरंजन मुख्य रूप से व्यापारी है और वह व्यापार की दृष्टि से व्यवहार कुशल और वाक् पटु जरूर है । लेकिन राजनीतिक दाव पेंच में वह कितना चतुर है, यह देखने-परखने का मौका कभी नहीं मिला । हमें राजनीति के मैदान में किसी नये खिलाड़ी को भेज कर खतरा नहीं लेना चाहिए ।"

राजा के पास ही बैठा हुआ विदूषक विनोद तभी मज़ाक के रूप में बोला- "महाराज ! यदि आप समझते हैं कि पुष्कर और निरंजन इस योग्य नहीं हैं तो क्यों नहीं यह काम मुझे सौंप देते !"

मंत्री को ऐसी गंभीर वार्ता में विदूषक का मज़ाक अच्छा नहीं लगा । उन्होंने भी मज़ाक में

ही किन्तु व्यंग्य से कहा-

"यदि हँसी-मज़ाक की बात करनी होती तो निस्सन्देह आप को ही यह काम सौंपा जाता, लेकिन यहाँ गंभीर वार्ता और राजनीतिक दावपेंच का सवाल है ।"

हिरण्य वदन जैसे कुछ सोचते और याद करते हुए बोले- "धवलगिरि राज्य में मेरे दूत बन कर जाने के लिए तुम सब प्रकार से योग्य हो । तुमने हमारी कठिनाई दूर कर दी । एक-दो दिन में वहाँ जाने के लिए आवश्यक तैयारी कर लो ।"

राजा का यह निर्णय सुन कर मंत्री को बड़ा आश्चर्य हुआ । वह राजा से कुछ कहना ही चाहते थे कि राजा ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा- "विनोद की तर्कबुद्धि और बातचीत की कुशलता से मैं प्रभावित हूँ और मेरा विश्वास है कि दूसरे पक्ष से सहमत हुए बिना वह तब तक वार्ताको जारी रख सकता है जब तक समझौता हमारी शर्त पर न हो । जब तक समझौता हमारे राज्य के हक में न हो, तब तक वार्ता को अनिश्चित-काल तक बरकरार रखना और तनाव में ढील बनाये रखना ही राजदूत का धर्म होना चाहिए, ताकि उस पक्ष से मुकाबला करने के लिए अधिक से अधिक तैयारी का मौका मिल सके ।"

राजा ने अपने निर्णय के अनुसार विनोद को समझौते के लिए राजा धनंजय के दरबार में भेज दिया । राजा को जैसी आशा थी, वार्ता बहुत दिनों तक चलती रही और इस बीच हिरण्य वदन युद्ध की तैयारी करते रहे । इतना ही नहीं, इन्होंने राजा धनंजय के विरुद्ध अन्य पड़ोसी राज्यों को भड़का कर अपने पक्ष में कर लिया और आक्रमण की स्थिति में उन की सहायता का वचन भी ले लिया । इस प्रकार हिरण्य वदन ने अपनी स्थिति इतनी मजबूत कर ली कि अन्य राज्यों की सहायता से धनंजय को परास्त भी कर सकते थे ।

विनोद अपने निर्धारित काम में सफल होने के कारण उसी राज्य में स्थायी राजदूत नियुक्त कर दिये गये ।

वज्रमूर्ख

पंडित शिवानन्द मिश्र वैशाली राज्य के जाने-माने विद्वान थे। बड़े-बड़े पंडित इनके घर पर आकर अपनी शंकाओं का समाधान करते।

एक बार गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य ने इन्हें अपने दीक्षान्त समारोह में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया। पंडित शिवानन्द ने घण्टे भर भाषण देने के बाद विद्यार्थियों से कहा- ''मेरे भाषण का सारांश अपनी समझ के मुताबिक एक-दो वाक्यों में लिख कर दिखाओ।''

सभी विद्यार्थियों ने ताड़ पत्र पर अपने अपने विचार लिख कर पंडित शिवानन्द को दिखाया।

पंडित शिवानन्द ने सबके विचार पढ़कर अपना मत देते हुए कहा- ''मैंने इसके पहले कई गुरुकुलों में भाषण दिया है। कई गुरुकुलों में कुछ विद्यार्थी विचार लिख कर अपना नाम देना भूल गये। परन्तु यहाँ इसके ठीक विपरीत एक घटना घटी है। एक विद्यार्थी यहाँ ऐसा है जो बेचारा नाम तो लिख गया है लेकिन अपना विचार लिखना भूल गया।''

कुछ विद्यार्थियों ने उस विद्यार्थी का नाम जानना चाहा। पंडित शिवानन्द ने वह ताड़ पत्र सबको दिखा दिया जिस पर सिर्फ एक शब्द लिखा था- ''वज्रमूर्ख।''

एक विद्यार्थी ने पंडित शिवानन्द को ही वज्रमूर्ख बनाने के लिए यह लिखा था लेकिन पंडित शिवानन्द ने अपनी बुद्धि से लिखने वाले को ही वज्रमूर्ख सिद्ध कर दिया।

राजा की अक्लमन्दी ?

अरुणगिरि के राजा प्रताप सेन एक बार अचानक बीमार पड़ गये और हर तरह की चिकित्सा-सुविधा के बावजूद उनकी हालत गिरती गई। अन्त में, उनकी आवाज़ भी बन्द हो गई और अपना सुख-दुःख किसी तरह संकेत से ही बताने लगे। राजा की लम्बी बीमारी के कारण राज-काज में बाधा होने लगी। इसलिए युवराज कीर्तिसेन को राज्य भार सौंप दिया गया।

कुछ दिनों के बाद राजा पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये। उन्हें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि उनका पुत्र बहुत अच्छी तरह शासन-कार्य संभाल रहा है और प्रजा को किसी बात का दुख नहीं है। इसलिए उन्होंने कुछ दिनों तक और विश्राम करने का निश्चय किया।

तभी अचानक एक दिन मंत्री बादरायण चल बसे। उनकी मृत्यु होते ही कीर्तिसेन को राज्य के कामों में कठिनाई होने लगी।

राजा प्रतापसेन ने मंत्री के चुनाव में सहायता करना चाहा, लेकिन कीर्तिसेन ने पिता से कहा- "कृपया अपने लिए मंत्री का चुनाव मुझे स्वयं करने दें।"

"ठीक है, तुम अपने मंत्री का चुनाव निस्सन्देह स्वयं करो, लेकिन मैं यह देखना चाहता हूँ कि तुम उम्मीदवारों की परीक्षा कैसे लेते हो।" इतना कह कर राजा प्रतापसेन भी मंत्री के चुनाव में कीर्तिसेन के साथ बैठ गये।

मंत्री पद के सभी उम्मीदवारों से कीर्तिसेन एक ही प्रश्न पूछ रहे थे- "पाँच दूनी कितने?" सभी उम्मीदवार इसका उत्तर "दस" बताते और उन सब को कीर्तिसेन नामंजूर कर देते।

स्वर्गीय मंत्री बादरायण के एक पुत्र था—गंधरायण। सूझ-बूझ और बुद्धि में वह अपने पिता से किसी भी दृष्टि से उनीस नहीं था। वह मंत्री पद के लिए अपने को सर्वथा

महेंद्रनाथ झा

योग्य समझता था।

जब गन्धरायण परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ तो उससे भी वही प्रश्न किया गया- "पाँच दूनी कितने ?"

गन्धरायण ने उत्तर दिया- "सात"

इस पर कीर्तिसेन बहुत प्रसन्न हुए और बोले- "तुम मेरे मंत्री होने के सर्वथा योग्य हो।"

"महाराज। आप का प्रश्न पहले ही जान लेने के कारण मैंने ऐसा उत्तर दिया है। लेकिन 'पाँच दूनी दस' क्यों नहीं हो सकता, इसका सही उत्तर तो केवल आप ही दे सकते हैं।" गन्धरायण ने अपना विचार स्पष्ट करते हुए कहा।

"यदि तुम भी यही जानते हो कि पाँच दूनी दस होते हैं तो मंत्री पद के लिए तुम भी योग्य नहीं हो सकते।" यह कहते हुए कीर्तिसेन ने गन्धरायण को भी अस्वीकृत कर दिया।

राजा प्रतापसेन, जो अब तक चुपचाप सब कुछ सुन रहे थे, कीर्तिसेन से बोले- "तुम इस प्रश्न के माध्यम से उम्मीदवार के बारे में क्या जानना चाहते हो ?"

"स्वर्गीय मंत्री बादरायण बड़े ही बुद्धिमान थे, इसे तो आप भी मानते हैं। वे प्रायः कहा करते थे कि मात्र अंकों का ज्ञान रखनेवाला बुद्धिमान नहीं हो सकता। मेरा विश्वास है कि उनका गणित कमजोर था और शायद यही उनकी बुद्धिमानी का राज़ था। इसीलिए मैं ऐसा मंत्री चाहता हूँ जिसका गणित-ज्ञान शून्य हो।" कीर्तिसेन ने अपने प्रश्न का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा।

कीर्तिसेन की अक्लमंदी पर प्रतापसेन ने अपना सिर पीट लिया। उन्हें विश्वास हो गया कि उनके पीछे में राज-प्रबन्ध की सफलता उनके बेटे की योग्यता के कारण नहीं, बल्कि बादरायण की बुद्धिमानी के कारण थी।

उन्होंने उम्मीद वारों में से सबसे योग्य व्यक्ति गन्धरायण को परीक्षा के लिए फिर से बुलवाया तथा उसे मंत्री-पद के लिए सब तरह से उपयुक्त पाकर मंत्री नियुक्त कर लिया।

नमक हराम

काशी नरेश ब्रह्मदत्त का पुत्र बचपन से ही दुष्ट स्वभाव का था। वह बिना कारण ही मुसाफिरों को सिपाहियों से पकड़वा कर सताता और राज्य के विद्वानों, पंडितों तथा बुजुर्गों को अपमानित करता। वह ऐसा करके बहुत प्रसन्नता का अनुभव करता। प्रजा के मन में इसलिए युवराज के प्रति आदर के स्थान पर घृणा और रोष का भाव था।

युवराज लगभग बीस वर्ष का हो चुका था। एक दिन कुछ मित्रों के साथ वह नदी में नहाने के लिए गया। वह बहुत अच्छी तरह तैरना नहीं जानता था, इसलिए अपने साथ कुछ कुशल तैराक सेवकों को भी ले गया।

युवराज और उसके मित्र नदी में नहा रहे थे। तभी आसमान में काले-काले बादल छा गये। बादलों की गरज और बिजली की चमक के साथ मूसल धार वर्षा भी शुरू हो गई। युवराज खुशी से तालियाँ बजाता हुआ नौकरों से बोला- "अहा! क्या मौसम है! मुझे नदी की मंझधार में ले चलो। ऐसे मौसम में वहाँ नहाने में बड़ा मजा आयेगा!"

नौकरों की सहायता से युवराज नदी की बीच धारा में जाकर नहाने लगा। वहाँ पर युवराज के गले तक पानी आ रहा था और डूबने का खतरा नहीं था। लेकिन वर्षा के कारण धीरे-धीरे पानी बढ़ने लगा और धारा का बहाव तेज होने लगा। काले बादलों से आसमान के ढक जाने के कारण अन्धेरा भी छा गया और पास के व्यक्ति का दिखना भी कठिन हो गया।

युवराज की दुष्टता के कारण इनके सेवक भी उससे घृणा करते थे। युवराज को उसकी दुष्टता का मज़ा चखाने का मौका उन्हें इससे अच्छा कब मिलता? इसलिए उसे बीच धारा में छोड़ कर सभी सेवक वापस किनारे पर आ गये। युवराज के मित्रों ने जब युवराज के बारे में

सेवकों से पूछा तो उन्होंने कहा कि वे जबरदस्ती हमलोगों का हाथ छुड़ा कर अकेले ही तैरते हुए आ गये। शायद राजमहल वापस चले गये हों।

मित्रों ने महल में आकर युवराज का पता लगवाया। लेकिन अभी तक युवराज वहाँ पहुँचा ही न था। बात राजा तक पहुँच गयी। उन्होंने तुरत सिपाहियों को नदी की धारा या किनारे-कहीं से भी युवराज का पता लगाने का आदेश दिया।

सिपाहियों ने नदी के प्रवाह में तथा किनारे दूर-दूर तक पता लगाया लेकिन युवराज का कहीं पता न चला। आधी रात तक खोज-बीन कर और आखिरकार निराश होकर वे वापस लौट आये।

इधर अचानक नदी में ब़ाढ़ आ जाने के कारण और नदी की धारा के तेज होने के कारण युवराज पानी के साथ बह गया। बाढ़ में बहता हुआ जब वह ऊब-डूब हो रहा था तभी उसे एक लकड़ी दिखाई पड़ी। युवराज ने उस लकड़ी को पकड़ लिया और वह उसीका सहारा लिये जल में बहता रहा। आत्म रक्षा के लिए तीन अन्य प्राणियों ने भी उस लकड़ी की शरण ले रखी थीं—एक साँप, एक चूहा और एक तोता।

युवराज ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था—बचाओ! बचाओ! लेकिन तूफान की गरज में

उसकी पुकार नक्कारे में तूती की आवाज़ की तरह खोकर रह गई। बाढ़ की लहरों के साथ युवराज बहता जा रहा था। थोड़ी देर के बाद तूफान थोड़ा कम हुआ और बारिश थम गई। आकाश साफ होने लगा और पश्चिम में डूबता हुआ सूरज चमक उठा। उस समय नदी एक जंगल से होकर गुजर रही थी। नदी के किनारे, उस जंगल में ऋषि के रूप में बोधिसत्व तपस्या कर रहे थे। युवराज की करुण पुकार कानों में पड़ते ही बोधिसत्व का ध्यान टूट गया।

वे झट नदी में कूद पड़े और उस लकड़ी को किनारे खींच लाये जिसने युवराज और तीन अन्य प्राणियों की जान बचायी थी। उन्होंने

अग्नि जला कर सबको गरमी प्रदान की, फिर सबके लिए भोजन का प्रबन्ध किया ।

सबसे पहले उन्होंने छोटे प्राणियों को भोजन दिया, तत्पश्चात युवराज को भी भोजन खिलाकर उसके आराम का भी प्रबन्ध कर दिया । इस प्रकार वे सब बोधिसत्व के यहाँ दो दिनों तक विश्राम करके पूर्ण स्वस्थ होने के बाद कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने-अपने घर चले गये ।

तोते ने जाते समय बोधिसत्व से कहा- "महानुभाव ! आप मेरे प्राणदाता हैं । नदी के किनारे एक पेड़ का खोखला मेरा निवास था, लेकिन अब वह बाढ़ में बह गया है । हिमालय में मेरे कई मित्र हैं । यदि कभी मेरी आवश्यकता पड़े तो नदी के उस पार पर्वत की तलहटी में खड़े होकर पुकारिये । मैं मित्रों की सहायता से आप की सेवा में अन्न और फल का भण्डार लेकर उपस्थित हो जाऊँगा ।"

"मैं तुम्हारा वचन याद रखूँगा ।" बोधिसत्व ने आश्वासन दिया ।

साँप ने जाते समय बोधिसत्व से कहा- "मैं पिछले जन्म में एक व्यापारी था । मैंने कई करोड़ रुपये की स्वर्ण मोहरें नदी के तट पर छिपा कर रख दी थी । धन के इस लोभ के कारण इस जन्म में सर्प योनि में पैदा हुआ हूँ । मेरा जीवन उस खज़ाने की रक्षा में ही नष्ट हुआ जा रहा है । वह मैं आप को अर्पित कर दूंगा । कभी मेरे यहाँ पधार कर इस उपकार का बदला चुकाने का मौका अवश्य दीजिए ।"

इसी प्रकार चूहे ने भी वक्त पड़ने पर अपनी सहायता देने का वचन देते हुए कहा—

"नदी के पास ही एक पहाड़ी के नीचे हमारा विशाल महल है जो तरह-तरह के अनाजों से भरा हुआ है । हमारे वंश के हजारों चूहे इस महल में निवास करते हैं । जब भी आप को अन्न की कठिनाई हो, कृपया हमारे निवास पर अवश्य पधारिए और सेवा का अवसर दीजिए । मैं फिर भी आप के उपकार का बदला कभी न चुका पाऊँगा ।"

सबसे अन्त में युवराज ने कहा- "मैं कभी-न-कभी अपने पिता के बाद राजा बनूँगा ।

तब आप मेरी राजधानी में आइए। मैं आप का अपूर्व स्वागत करूँगा।"

कुछ दिनों के बाद ब्रह्मदत्त की मृत्यु हो गई और युवराज काशी का राजा बन गया। राजा बनते ही यह प्रजा पर तरह-तरह के अत्याचार करने लगा। सच्चाई और न्याय का कहीं नाम न था। झूठ और अपराध फलने-फूलने लगे। प्रजा दुखी रहने लगी।

यह बात बोधिसत्व से छिपी न रही। उसे राजा का निमंत्रण याद हो आया। उसने सबसे पहले राजा के यहाँ जाने का निश्चय किया। वे एक दिन राजा से मिलने के लिए काशी पहुँचे।

बोधिसत्व नगर में प्रवेश कर राज पथ पर पैदल चल रहे थे। तभी हाथी पर सवार होकर राजा सैर के लिए जा रहा था। उसने बोधिसत्व को पहचान लिया और तुरत अपने अंग रक्षकों को आदेश दिया- "इस साधु को पकड़ कर खंभे से बाँध दो और सौ कोड़े लगाओ और इसके बाद इसको फाँसी पर लटका दो। यह इतना घमण्डी है कि इसने एक बार जान बूझ कर मेरा अपमान किया था। मुझे युवराज जानते हुए भी मुझसे अधिक सम्मान साँप, चूहे और तोते को दिया था।"

राजा का आदेश पाकर उसके अंगरक्षक बोधिसत्व पर कोड़े बरसाने लगे। बिना अपराध एक साधु पर कोड़े बरसते देख प्रजा की भीड़ एकत्र हो गई।

कुछ व्यक्तियों ने पूछा- "महात्म ! क्या

आपने इस दुष्ट राजा का कभी उपकार किया है ?"

बोधिसत्व ने राजा को नदी में डूबने से बचाने की सारी कहानी सुना दी। प्रजा पहले से ही राजा की दुष्टता, क्रूरता और अत्याचार से ऊब चुकी थी। एक निर्दोष साधु को इस प्रकार सताये जाते देख कर उनके धैर्य का बाँध टूट गया। वे पागल कुत्तों की तरह अंग रक्षकों पर टूट पड़े और उन्हें मार-मार कर खदेड़ दिया।

प्रजा का रोष देख कर राजा भाग खड़ा हुआ। लेकिन प्रजा की क्रुध भीड़ ने उसका पीछा किया और हाथी पर से नीचे घसीट कर मार डाला।

अत्याचारी राजा की मौत पर राज्य भर में खुशी मनाई गई। लेकिन अब सवाल यह पैदा हुआ कि राजा किसे बनाया जाये। राजा के कोई पुत्र न था। राजघराने में भी कोई ऐसा योग्य व्यक्ति न था जिसे राज्य सौंपा जा सके। अन्त में, प्रजा तथा राजा के दरबारियों ने भी बोधिसत्व से राज्य भार संभालने की प्रार्थना की।

प्रजा के अनुरोध पर बोधिसत्व काशी के राजा बन कर न्याय और धर्मपूर्वक राज्य करने लगे।

वे साँप, चूहे और तोते को भूले नहीं थे। वे एक-एक कर सबके पास गये और कृतज्ञता पूर्वक उनके आतिथ्य और उपहार को स्वीकार किया। इतना ही नहीं, उनके अमूल्य उपहारों के साथ उन्हें भी अपने साथ राजधानी में ले आये। उनके उपहारों का धन प्रजा के हित के लिए खर्च किया गया और उन प्राणियों के निवास के लिए सुन्दर स्थान बना दिये गये।

साँप के निवास के लिए महल में ही सोने की एक सुरंग बनवा दी गई। चूहे के लिए मणि-माणिक्य से जड़ा हुआ एक बिल बनवा दिया गया। तथा तोते के लिए सोने का एक पिंजड़ा तैयार किया गया।

इस प्रकार महात्मा बोधिसत्व के राज्य में प्रजा सब तरह से सुखपूर्वक जीवन बिताने लगी।
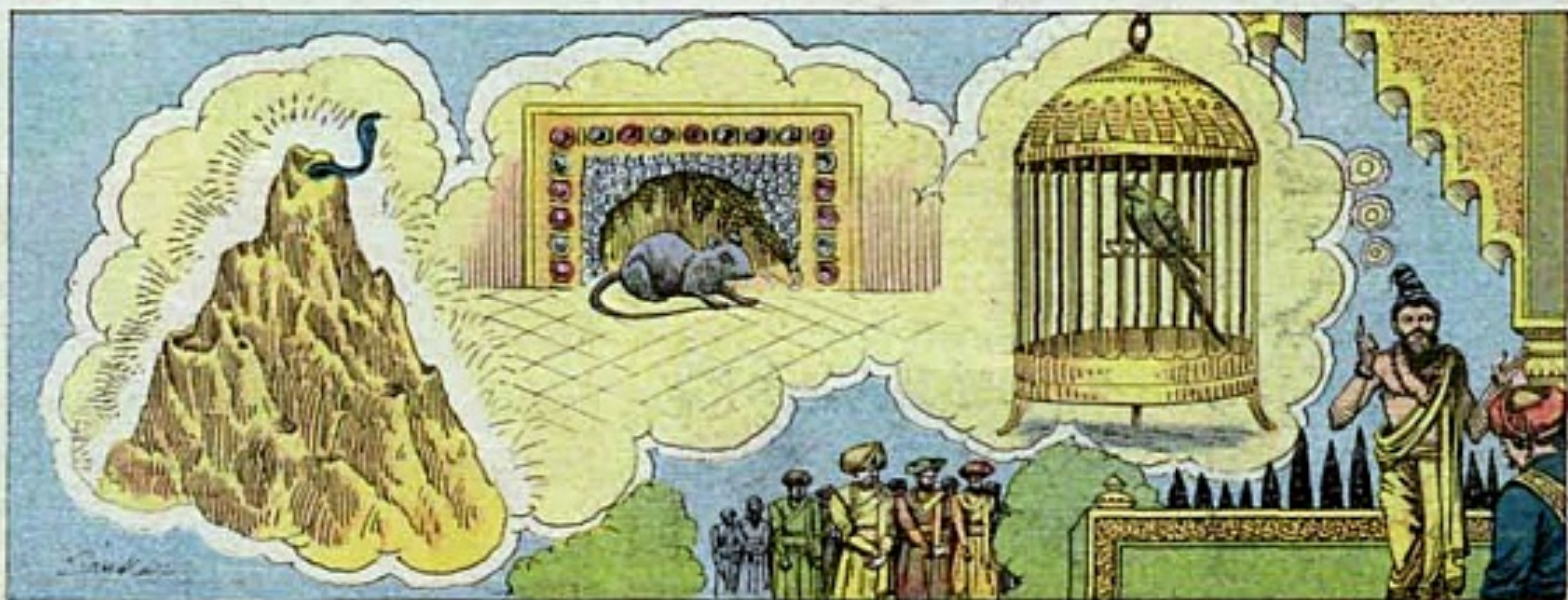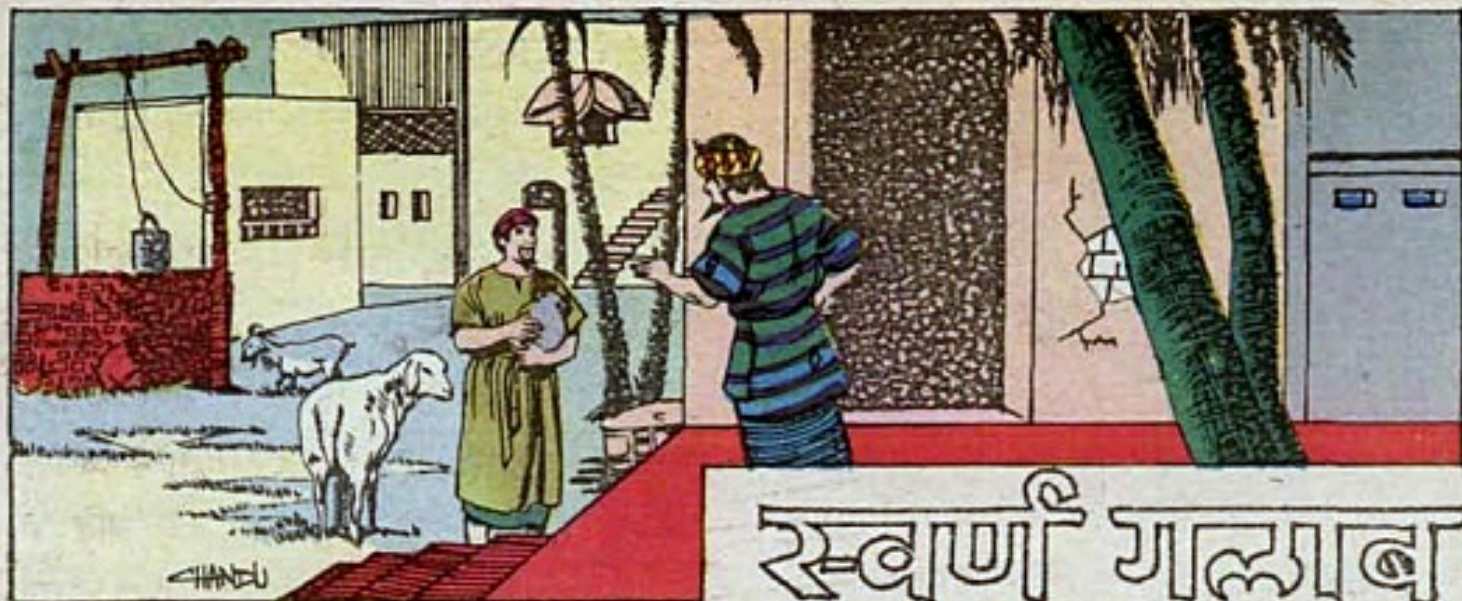
स्वर्ण गुलाब

आर्मीनिया देश के एक गाँव में एक गरीब किसान रहाता था। उसके पास जमीन के नांम पर सिर्फ़ एक एकड़ धरती थी, जो ज्यादा उपजाऊ भी न थी। किसान, उसकी पत्नी और उनका बेटा खेत में कड़ी मेहनत करते थे, फिर भी खेत से उन्हें पर्याप्त अनाज नहीं मिलता था। इस कारण वे लोग अक्सर भूखे रह जाते थे।

इस हालत में किसान ने किसी दूसरे प्रदेश में जा बसने का निश्चय किया और अपना खेत पड़ोसी किसान को बेच डाला। वह किसान भी ज्यादा संपन्न न था, मेहनत करके उसने जो कुछ बचाया था, उसी से उसने यह खेत खरीद लिया। एक दिन वह उस खेत को जोतने गया।

अचानक हल के फाल से कोई चीज़ टकरा गई और ठन् की आवाज़ हुई। किसान ने उस जगह पर खोद डाला, उसे एक छोटे से पात्र में सोने के कई सिक्के दिखाई दिये। वह किसान बड़ा ही ईमानदार था। उसने अपने मन में सोचा- "मैंने सिर्फ़ खेत खरीदा है। पर इसके अन्दर पहले से ही जो संपत्ति गड़ी गई है, वह मेरी कदापि नहीं हो सकती। यह संपत्ति तो वास्तव में उसी किसान की है, जिस से मैंने यह खेत ख़रीदा है। यों विचार करके वह उस खेत को बेचने वाले किसान के पास सोने के सिक्कों से भरा पात्र लेकर पहुँचा और बोला- "भाई साहब, तुमने मुझे जो खेत बेचा था, उस में मुझे सोने के ये सिक्के मिले, तुमने तो मेरे हाथ सिर्फ़ खेत ही बेचा था, इसलिए ये सिक्के तुम्हारे हैं, ले लो।"

इस पर उस किसान ने कहा- "भाई, मैं ने वह खेत तुम्हें बेच दिया है। इस वक्त तुम उस खेत के मालिक हो, इसलिए ये सिक्के मेरे कैसे

आर्मीनिया की लोक कथा

हो सकते हैं ? तुम्हीं इनके हक़दार हो। ऐसी हालत में अन्याय पूर्वक मैं इन्हें कैसे ले सकता हूँ ? मैं कई वर्षों से यह खेत जोतता आ रहा था। अगर मेरे भाग्य में बदा होता तो ये सिक्के कभी मेरे हाथ लग जाते। दर असल ये सिक्के तुम्हारे भाग्य में बदे थे, इसलिए तुम्हें मिल गये। मुझे बड़ी खुशी हो रही है कि मेरे खेत ख़रीदने वाले महाशंय को मेरे खेत में इतनी भारी संपत्ति मिल गई। इसलिए ये सिक्के तुम्हीं रख लो।"

"भाई साहब, मैं दूसरों की संपत्ति हड़पने वाला पापी नहीं हूँ! दूसरों के भोलेपन से बेजा फ़ायदा उठाने की बात मैं सोच भी नहीं सकता। इसलिए तुम वाद-विवाद की ये बातें छोड़कर ये सिक्के ले लो।" खेत खरीदने वाले किसान ने कहा।

इस बात को लेकर दोनों किसानों के बीच देर तक वाद-विवाद चलता रहा। आख़िर हालत यहाँ तक पहुँची कि दोनों मार-पीट करने पर तुल गये। उनको झगड़ते देख कई लोग वहाँ पर इकट्ठे हो गये। सब ने झगड़े का कारण जानकर उन्हें समझाया- "तुम लोग आपस में नाहक क्यों लड़ते हो! राजा के पास पहुँचकर इसका फ़ैसला क्यों नहीं करवाते ?" सब लोगों के समझाने पर थोड़ी देर बाद वे शांत हो गये और इस झगड़े का फ़ैसला करवाने के लिए राजा के पास पहुँचे।

राजा उन किसानों की ईमानदारी पर हैरान और मुग्ध थे। उन्होंने थोड़ी देर तक सोचकर खेत बेचने वाले किसान से पूछा- "बोलो,
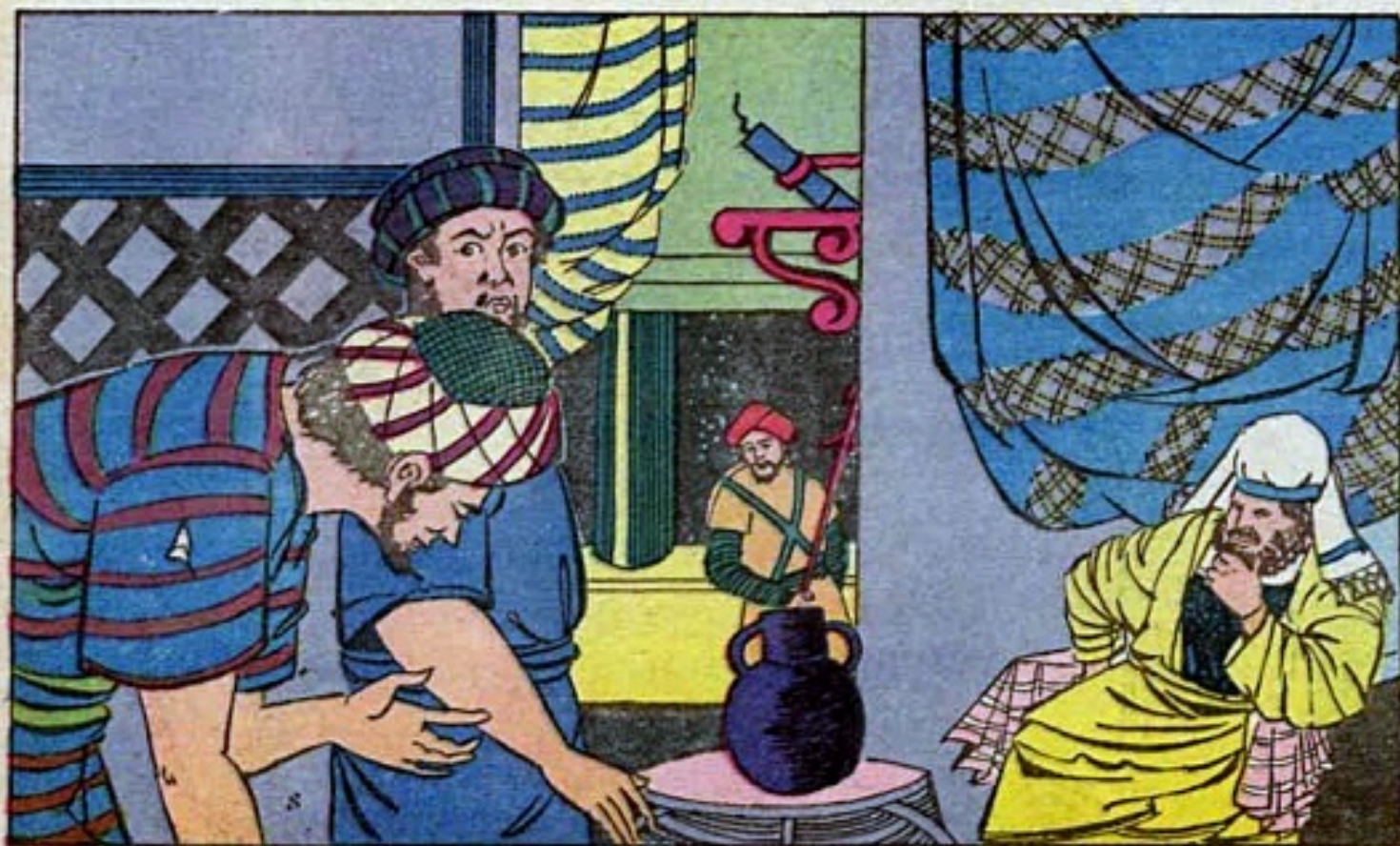
तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?"

"महाराज, मेरे तो एक ही लड़का है !" किसान ने जवाब दिया । इसके बाद खेत खरीदने वाले किसान से भी राजा ने यही सवाल किया । उस ने कहा- "प्रभू ! मेरे तो सिर्फ़ इकलौती बेटी है !"

राजा को फिर आश्चर्य हुआ । वे खुश होकर बोले- "तुम लोग एक काम करो ! उन दोनों की शादी करके यह सोना उन्हें भेंट कर दो ।"

किसानों की समस्या बड़ी आसानी से हल हो गई । इस पर वे दोनों बहुत खुश हुए । इसके बाद उन दोनों ने सोना बेच कर बड़ी उपजाऊ जमीन ख़रीद ली और अच्छे मकान भी बनवा लिए । अपने बच्चों का वैभव पूर्वक विवाह करके अड़ोस-पड़ोस वालों को भारी भोज दिया ।

उस दिन से दोनों परिवार परस्पर सहयोग करते हुए सुख पूर्वक अपने दिन बिताने लगे । अच्छी फसल होते रहने के कारण कुछ ही वर्षों में दोनों परिवार अत्यंत संपन्न हो गये ।

खेत में जहाँ सोना मिला था, उस जगह एक गुलाब का पौधा निकल आया । उस में से सोने जैसे चमकने वाले फूल भी निकल आये ।

एक दिन राजकुमार ने शिकार खेलने के लिए जाते समय उस फूल को देखा । उसके मन में उस फूल को तोड़ ले जाने की इच्छा पैदा हुई । राजकुमार ने इस बात का विचार तक नहीं किया कि खेत के मालिक से अनुमति लेकर फूल तोड़ना चाहिए । वह घोड़े से उतर पड़ा, गुलाब के पौधे के पास पहुँच कर फूल लगी

टहनी को खींच डाला। दूसरे ही क्षण वह पौधा जमीन से उछल कर राजकुमार के सिर के ऊपर से उड़ता हुआ आसमान की ओर तेजी के साथ चला गया।

राजकुमार को आश्चर्य के साथ क्रोध भी आया। वह घोड़े पर सवार हो थोड़ी दूर चला गया, फिर मुड़कर पीछे की ओर देखा। गुलाब का पौधा यथास्थान था। इस विचित्र दृश्य को देख राजकुमार के विस्मय का ठिकाना न रहा। उसने पौधे के पास पहुँच कर पुनः फूल तोड़ना चाहा, पर उसका हाथ लगते ही गुलाब का पौधा फिर आसमान में उड़कर चला गया।

राजकुमार का दिमाग चकरा गया! उसने घोड़े पर सवार हो थोड़ी दूर जाकर फिर मुड़कर फूल के पौधे की ओर देखा। आश्चर्य की बात थी कि गुलाब का पौधा पूर्ववत अपनी जगह मौजूद था।

वह फिर लौट आया। उसने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि किसी तरह से वह एक स्वर्ण गुलाब अवश्य तोड़ेगा। उसने अपने दोनों हाथ बढ़ाकर एक फूल तोड़ना चाहा। इस बार भी फूल उड़कर आसमान में चला गया।

इस पर राजकुमार को असहनीय क्रोध आया। उसने नौकरों को बुला कर खेत की फसल के साथ सब कुछ नष्ट करने का आदेश दिया। दूर पर खड़े कुछ किसानों ने इस दृश्य को देखा। लेकिन यह दुष्ट कार्य कराने वाला व्यक्ति राजकुमार था, इसलिए उसको रोकने का साहस किसी को न हुआ।

इसके बाद राज कुमार ने अपने महल को लौट कर सारा वृत्तांत राजा को सुनाया। राजा को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पंडितों को बुलवा कर इसका रहस्य जानना चहा, पर उनमें से कोई भी गुलाब के पौधे के गायब हो जाने का कारण न बता सका।

राजकुमार के मन में इसका रहस्य जानने की उत्सुकता इतनी बढ़ी कि उसने उस रहस्य को जानने वाले व्यक्ति से मिलने के लिए देश-देश में घूमने का निश्चय किया।

राजकुमार देशाटन पर घूमते हुए सबके द्वारा समझदार और बुद्धिमती कही जानेवाली एक बुढ़िया से मिला और उसको सोने के गुलाब के पौधे का समाचार सुनाया। उसने सारा वृत्तांत सुन कर सोचा कि इसके पीछे कोई अपूर्व रहस्य है। उसने कहा- "बेटा, तुम्हारे मार्ग में एक बौना आदमी दिखाई देगा, उस से पूछ लो, शायद वह इसका रहस्य तुम्हें बता सके।"

बूढ़िया के बताये मुताबिक़ राजकुमार को नगर के द्वार पर एक बौना आदमी दिखाई दिया। उसने बौने को विस्तार पूर्वक गायब होनेवाले सोने के गुलाब के पौधे का समाचार सुनाया। बौना सर हिला कर दो-चार मिनट तक मौन रहा, फिर बोला- "महाशय, उन किसानों के श्रम और ईमानदारी के चिह्न के रूप में सोने के फूल वाला गुलाब का पौधा पैदा हुआ है। इसलिए सोने के उन गुलाबों को तोड़ने का हक़ दूसरों को नहीं है। यह अधिकार केवल उन्हीं को है। इसलिए कोई भी उनकी फसल और गुलाब के पौधे को नष्ट नहीं कर सकेगा। इसके पीछे जो रहस्य है, वह यही है कि पड़ोसी के ऐश्वर्य को देख ईर्ष्या किये बिना हरेक व्यक्ति श्रम करके उसके फल का उपभोग करे।"

बौने के मुँह से ये बातें सुनकर राजकुमार ने लज्जा के मारे अपना सर झुका लिया। उसे याद आया कि उसने क्रोधावेश में आकर किसानों की फसल नष्ट करवा दी है।

इसके बाद राजकुमार बौने के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करके वापस लौट पड़ा। उसने अपने मन में निश्चय किया कि उसने अपने नौकरों के द्वारा किसानों की जो फसल नष्ट करवा दी है, उसका वह मुआवजा देगा।

थोड़े दिन बाद राजकुमार किसानों के गाँव में पहुँचा तो वहाँ के दृश्य को देख कर देखता ही रह गया। उसके नौकरों ने जो फसल नष्ट कर दी थी, उस जगह हरे खेत फिर से लहलहा रहे थे।

सोने के गुलाब वाला पौधा भी यथास्थान खड़ा दर्शकों के मन को मोह रहा था।

प्रताप के साहसिक कार्य

[जंगल में अनाथ बालक के रूप में प्रताप एक सिद्ध योगी को प्राप्त हुआ था। उसने चन्दू नामक एक बंदर और मीना नामक एक बालिका के साथ मैत्री कर ली।]

प्रताप जिस जंगल में रहता था, वह चोर और डाकुओं का अड्डा था। एक दिन उस जंगल से गुजरने वाले तीर्थ यात्रियों पर हमला करके डाकुओं ने उनकी संपत्ति लूट ली।

पेड़ों की डालों की ओट में रह कर प्रताप और बंदर चन्दू ने उस दृश्य को देखा। उन्होंने छिप कर डाकुओं का पीछा किया।

डाकुओं ने लूटी हुई संपत्ति को एक गुफा में छिपा कर उसे एक चट्टान से बंद कर दिया और वहाँ से चले गये।

प्रताप गुफा के पास पहुँचा, पर गुफा पर ढके चट्टान को हटा नहीं सका। परख कर देखने पर उसे चट्टान की एक ओर एक सुराख दिखाई दिया।
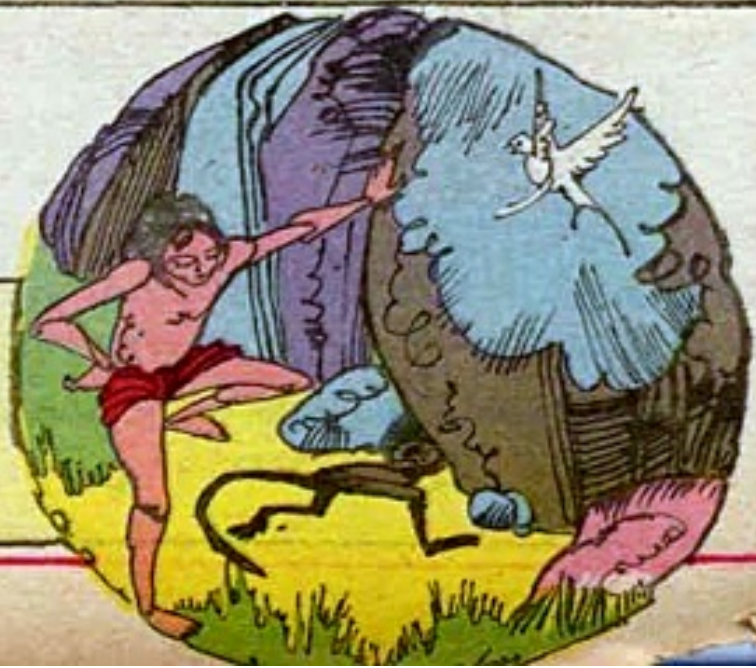
प्रताप के इशारा करते ही चन्दू उस सुराख से होकर गुफा के अन्दर चला गया। चन्दू गहनों की गठरी उठा नहीं सका। इसलिए वह गठरी खोल कर एक एक गहना बाहर लाकर प्रताप के सामने रखने लगा।

इस प्रकार थोड़ी ही देर में चोरों के द्वारा लूटी गई सारी संपत्ति चन्दू बाहर ले आया, और प्रताप को दे दी। आखिर में उस पर बांधा गया वस्त्र भी ले आया।
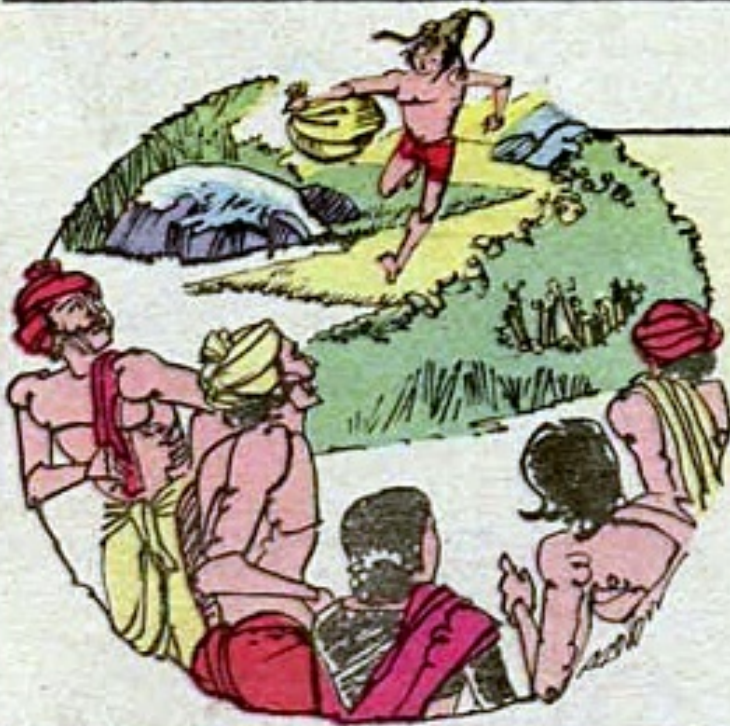
तीर्थ यात्रियों ने उस दिन रात को एक भटियारिन के घर विश्राम किया और सवेरे उठते ही अपनी इस विपदा पर दुखी हो वहाँ से चल पड़े। रास्ते में उन्हें एक जगह यह पुकार सुनाई दी- "रुक जाओ।"
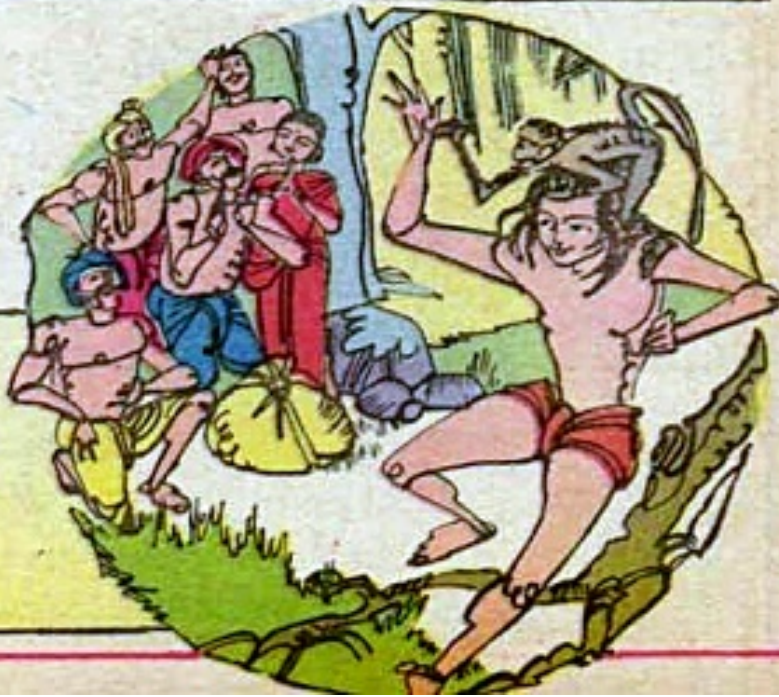
वे लोग रुक गये। प्रताप ने दौड़ते हुए जाकर उनके गहनों की गठरी दे दी। यात्रियों की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। वे लोग प्रताप को कोई पुरस्कार देना चाहते थे पर इस बीच वह तेजी से वहाँ से चला गया।
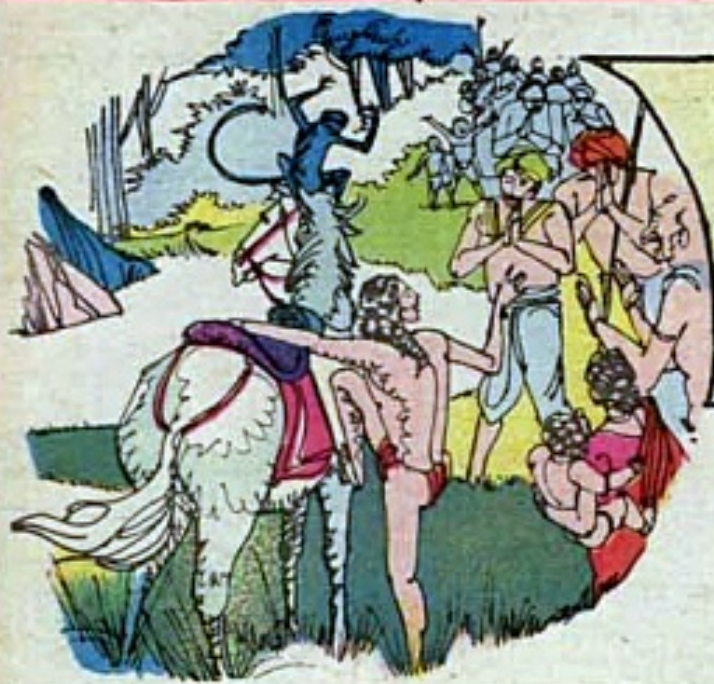
एक बार प्रताप ने गाँव वालों को डाकुओं के हमले की सूचना पहले ही देकर उन्हें बचाया, इस पर प्रसन्न होकर गाँव वालों ने उसको एक घोड़ा पुरस्कार में दिया ।

एक दिन प्रताप नदी में स्नान करते समय उसकी तेज धारा में बह गया । आखिर वह एक सुरंग में जा पहुँचा । वहाँ पर उसे सोने के सिक्कों के ढेर दिखाई दिये । उन में से मुट्ठी भर सिक्के ले जाकर उसने गाँव वालों में बाँट दिया ।
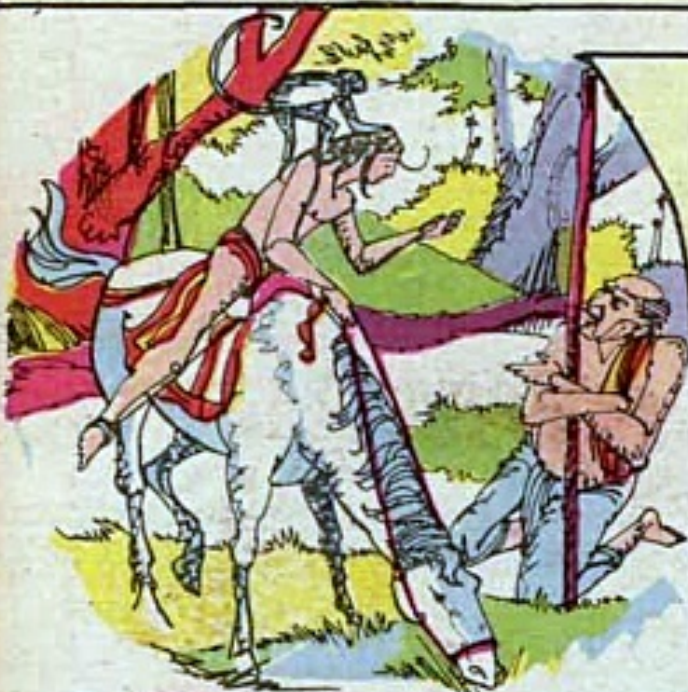
यह समाचार एक दुष्ट एवं कंजूस जमींदार को मिला । वह एक गरीब का वेष धर कर प्रताप के पास पहुँचा और उसकी मदद मांगी ।

प्रताप को उस पर दया आ गई । वह जमीन्दार को साथ लेकर नदी के पास पहुँचा । नदी में उतर कर तैरते हुए अंधेरी गुफा की ओर बढ़ा । थोड़ी देर में वह कुछ सोने के सिक्कों के साथ लौट आया और उन्हें जमीन्दार को दे दिया ।

स्पारको के साहसिक कार्य – १

गर्मी की छुट्टीयां मनदीप और रोहित जंगल में घूम रहे हैं.

अरे रोहित वह आग तो नहीं?

तुम्हारी सावधानी ने जंगल को आग और नुकसान से बचा लिया.

तुम किस कक्षा में पढ़ते हो और बड़े होकर क्या बनना चाहते हो?

मैं हूँ रोहित, मैं ७वीं कक्षा में पढ़ता हूँ. और मैं इन्जीनीयर बनूंगा.

मैं हूँ मनदीप, ८वीं कक्षा में पढ़ता हूँ. और मैं बहुत बड़ा डॉक्टर बनूंगा.

डॉक्टर क्यों?

क्यों कि मेरी एक सहेली आग से बहुत बुरी तरह जल गयी थी

उसके घर में केरोसीन का स्टोव फट गया था.

और उसे हफ्तों अस्पताल में रहना पड़ा

वह अब तक पूरी तरह से ठीक नहीं हुई.

क्या तुम, लोगों को आग से बचाना चाहते हो ?

? ?

मैं तुम्हें महान जादूशक्ति दे सकता हूँ जो तुम्हें आग से लोगों को बचाने के काम आएगी. पर तुम उसका गलत प्रयोग कभी नहीं करोगे.
जी, स्वामी जी.

SPARKO
SPARKO
SPARKO
SPARKO

यह अंगूठी लो, और अपने दाएँ हाथ के बीच की उंगली में पहन लो.

अब अंगूठी को घुमाओ और बोलो "स्पारको आ जाओ"
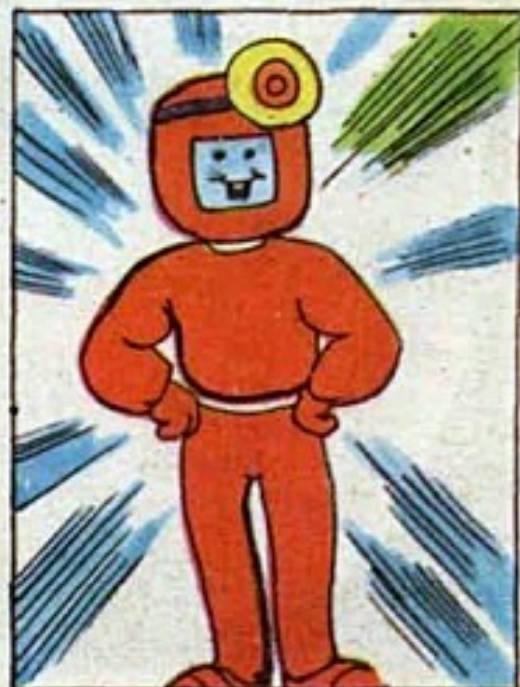
COME
SPARKO
SPARKO
SPARKO

स्पार्को तुम रोशनी से तेज़ रफ्तार से दौड़ सकते हो और झट से वहाँ पहुँच सकते हो जहाँ तुम्हारी ज़रूरत हो.

पर स्वामीजी मैं कैसे जानूँगा कि मुझे स्पार्को कब बनना है?

तुम्हारी अंगूठी से दो बार बीप बीप की आवाज़ आएगी फिर तुम अंगूठी घुमाओ और स्पार्को बन जाओगे. तुम्हारा हेलमेट एक प्रोजेक्टर भी है. बस बटन दबाओ और तुम्हें सारा दृश्य दिखेगा.
BEEP
BEEP

अपना कार्य करने के बाद अपने कमरे में लौट आओ, अंगूठी को घुमाओ और कहो मनदीप आ जाओ.

स्वामीजी मैं आपके विश्वास के योग्य बनने की पूरी कोशिश करूँगा.

और स्वामीजी क्या मैं भी कुछ कर सकता हूँ?

हाँ! जब मनदीप स्पार्को का कार्य कर रहा हो, तुम्हें उसके रहस्य की रक्षा करनी होगी किसी को पता नहीं चलना चाहिए कि मनदीप ही स्पार्को है.

अब आगे बढ़ो तुम्हें अपने कार्य में सफलता मिले.
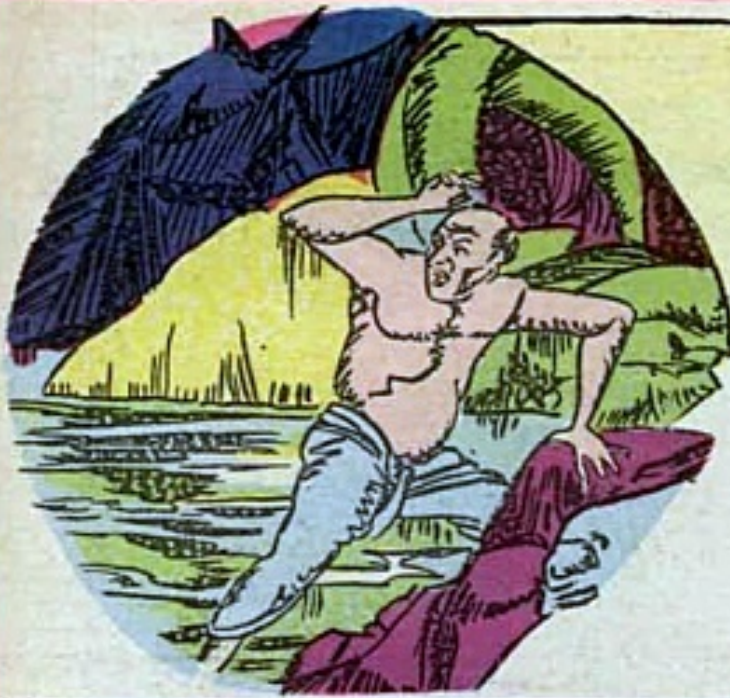
जमीन्दार ने उस जगह को अच्छी तरह याद रखा। उस रात को वह नदी में तैरकर एक सुरंग में पहुँचा। वहाँ पर उसे सोने के सिक्के नहीं मिले, क्यों कि रास्ता भटक कर वह किसी दूसरी सुरंग में चला गया था।

वापस लौटने का रास्ता न मालूम होने से जमीन्दार दो दिनों तक वहीं पर फँसा रह गया। इसके बाद वह प्राणों के भय से चिल्लाने लगा- "मुझे बचाओ, मुझे बचाओ !" पहाड़ पर प्रताप के साथ खेलने वाली मीना को उसकी पुकार सुनाई पड़ गई !

प्रताप किसी को खतरे में समझ कर वहाँ के एक सुरंग के मार्ग में उतर पड़ा। लोभी जमींदार आपाद मस्तक कांपते हुए प्रताप के पैर पकड़ कर बचाने की प्रार्थना करने लगा।

प्रताप को इस बार भी उस पर दया आ गई। जमीन्दार ने उसे वचन दिया कि वह फिर कभी उस प्रदेश में नहीं आएगा। प्रताप उसकी आँखों पर पट्टी बांध कर सुरंग के मार्ग से उसको बाहर ले आया।

जमीन्दार ने प्रताप से बदला लेने का निश्चय किया। एक दिन शाम के समय प्रताप अपने घोड़े पर कहीं जा रहा था। उस वक्त उसे यह पुकार सुनाई दी- "बचाओ, बचाओ।"

प्रताप पुकार आने वाली दिशा में आगे बढ़ा। अचानक जमीन्दार और उसके नौकरों ने प्रताप को घेर लिया और उसे बन्दी बना लिया।

जमीन्दार ने प्रताप को अपने महल की दूसरी मंजिल पर एक कमरे में बन्द रखा और उसे धमकी दी कि सोने के सिक्कों वाली सुरंग यदि उसने न बताई तो उसकी जान की ख़ैर नहीं।

प्रताप का दोस्त चन्दू यह सब देखता रहा। रात के समय कमरे की छत पर के खपरैल हटा कर चन्दू ने कमरे के अन्दर एक रस्सी खिसका दी। प्रताप उसके सहारे कमरे से बाहर आ गया।
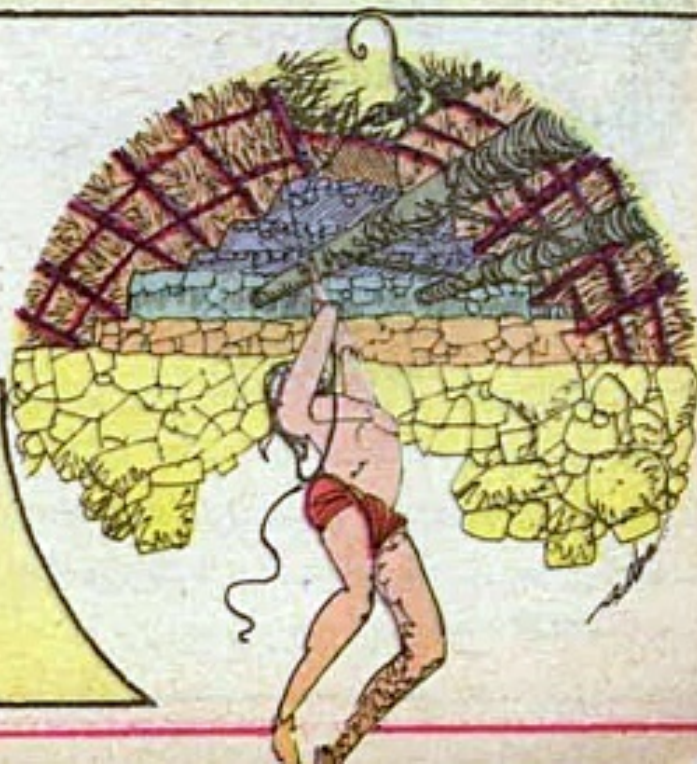
मकान के नीचे एक खंभे से प्रताप का घोड़ा बंधा हुआ था। चन्दू ने अपने दाँतों से रस्सी को काट कर घोड़े को मुक्त किया, और प्रताप छत से घोड़े पर कूद पड़ा।

घोड़े की हिनहिनाहट सुन कर जमीन्दार और उस के नौकर मकान से बाहर आये। वे लोग प्रताप को रोकने के लिए आगे बढ़े, पर इस बीच प्रताप और उसका मित्र चन्दू वहाँ से भाग गये।

उस खतरे से बचकर सुरक्षा पूर्वक जंगल पहुँचने पर प्रताप और चन्दू को बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रताप की आँखों से आनंद के आँसू निकल आये, चन्दू ने प्यार से खुशी के उन आँसुओं को पोंछ डाला।

दूसरे दिन सूर्योदय के समय प्रताप जंगल में जो उसे पालकर बड़ा किया था उस सिद्ध योगी की समाधि के पास पहुँचा और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके खड़ा होकर प्रार्थना करने लगा।
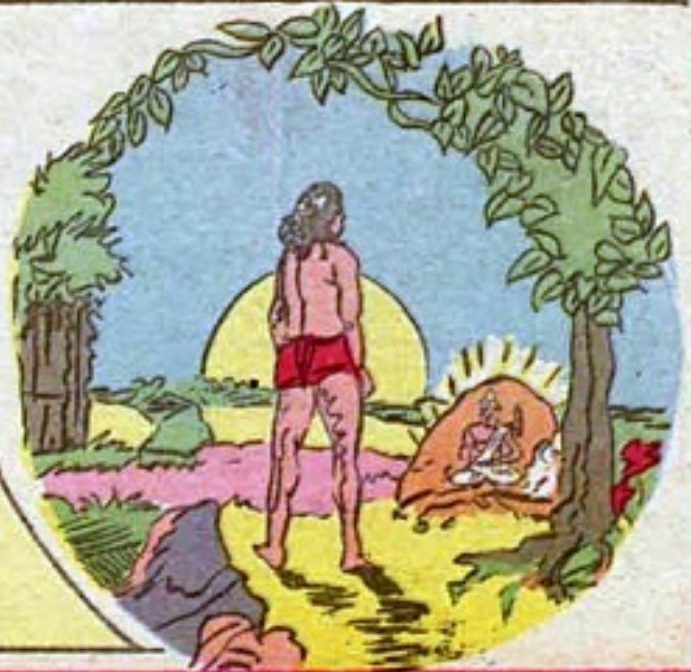
युवराज और मोर

हज़ारों साल पहले दक्षिण के किसी टापू में एक राजा रहा करता था। उस टापू में समय पर वर्षा होती और अच्छी पैदावार भी। इस कारण जनता सुखी और संपन्न थी। पर राजा हमेशा चिंतित रहा करता। इसका कारण यह था कि राजा का इकलौता पुत्र गूंगा था। वह अपनी दस साल की उम्र तक एक बार भी मुँह खोल कर बोल नहीं सका था।

उसी टापू के दूसरे प्रांत में पांगो नामक एक युवक रहता था। वह अव्वल दर्जे का आलसी था, पर था बड़ा अक्लमंद। वह दिन भर गाँव का चक्कर काटते हुए अपनी हाज़िर-जवाबी के द्वारा गाँव वालों को हंसाया करता था। गाँव वाले उसके हँसानेवाले शब्द सुन कर अपने सारे कष्ट भूल जाते। वह सीधा-सादा और सरल व्यक्ति था। इस कारण सब लोग उसको दिल से चाहते थे। आराम के समय उसे घर बुलाकर उसकी हास्योक्तियाँ घर के सारे लोग सुनते थे। बदले में उसे कुछ न कुछ भेंट करते थे। खाना भी खिला देते थे। इस तरह वह अपना पेट भर लेता था।

थोड़े दिन इस तरह बीत गये। आख़िर गाँव वाले उसकी हास्योक्तियों से ऊब गये और बोले- "तुम कोई न कोई काम-धंधा करके अपना पेट क्यों नहीं भर लेते ?" इस पर पांगो उस गाँव को छोड़ जीविका की खोज में चल पड़ा।

चलते-चलते दोपहर हो गई। भूख से विह्वल हो उसने चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई। समीप में ही उसे एक मकान दिखाई दिया। पांगो ने उस मकान के पास पहुँच कर दरवाज़ा खटखटाया।

मकान मालकिन ने दरवाज़ा खोला और पांगो का चेहरा देखते ही भांप गई कि वह भूख से परेशान है, इसलिए वात्सल्य से प्रेरित होकर बोली- "तुम भूखे मालूम होते हो। अन्दर

आकर खाना खा लो।"

पांगो का उत्साह उमड़ पड़ा और वह मकान के अन्दर चला गया। मकान मालकिन ने उसे खाना परोसा, खुद भी परोस कर खाना खाने लगी। इस बीच इधर-उधर की बातें सुना कर उसने समीप में स्थित टापू के राजा का वृत्तांत भी बताया।

"बेटा, तुमने सुना ही होगा कि हमारे देश का युवराज गूंगा है। उसको बोलवाने वाले को राजा किस प्रकार के पुरस्कार देने वाले हैं, जानते हो? एक कमरा भर फल, अन्य स्वादिष्ट पदार्थ! दूसरे कमरे भर का सोना, तीसरे कमरे भर क़ीमती रंग-बिरंगे वस्त्र, आदि। पर फ़ायदा ही क्या? आज तक कोई भी उस पुरस्कार को जीत नहीं पाया।"

पांगो ने सोचा कि यदि कोई न कोई उपाय करके राजकुमार का गूंगापन दूर कर दिया जाये तो उसकी सारी समस्या हल हो जाएगी और वह अपना शेष जीवन आराम से बिता सकेगा। इस विचार के आते ही पांगो के मन में उन पुरस्कारों को प्राप्त करने की इच्छा पैदा हो गई। वह सीधे राजा के दर्शन करने चल पड़ा। लेकिन देर तक माथा-पच्ची करने पर भी उसकी समझ में नहीं आया कि युवराज के मुँह से कैसे बोलवाया जाये।

रास्ते में उसे एक बूढ़ा दिखाई दिया। पांगो ने आज तक ऐसे कंकाल बने बूढ़े को नहीं देखा

था। उसके कंधे पर सूखी लकड़ियों की छोटी गठरी थी। पांगो को उस पर दया आ गई।

पांगो बूढ़े के समीप पहुँचा और बोला- "दादा, मालूम होता है कि लकड़ियों का गट्ठर भारी है। लाओ, मैं उठा लेता हूँ।" यों कह कर उसने गट्ठर अपने हाथों में ले लिया।

बूढ़े ने पांगो की ओर वात्सल्य भरी दृष्टि से देखा, तथा उसके साथ चलते हुए बातचीत छेड़ दी। वार्तालाप के बीच उसने पांगो से पूछा- "बेटा, तुम कहाँ जाते हो?"

पांगो ने अपना वृत्तांत सुना कर कहा- "राजा के द्वारा दिया जाने वाला पुरस्कार बहुत बड़ा है, पर मेरी समझ में नहीं आता कि

युवराज से कैसे बोलवाया जाये। मैं इधर दो-चार दिनों से माथा-पच्ची कर रहा हूँ, पर मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है।" यों कह कर पांगो ने अपनी चिंता प्रकट की।

"बस! यही बात है?" यह कह कर बूढ़ा धीरे से हँस पड़ा, और बोला- "बेटा, तुम एक काम करो। पहले इस बात का पता लगाओ कि छोटे बच्चों को आनंद सागर में डुबा सकने वाला स्वर किस पशु या पक्षी के अन्दर है! इसके बाद ऐसा प्रयत्न करो कि युवराज उस ध्वनि को सुन सके। इस से क्या होगा, जानते हो? राजकुमार के मन में उस ध्वनि का अनुकरण करने की इच्छा पैदा होगी और वह अपना मुँह खोल कर गाने या बोलने लग जाएगा। इस प्रकार उसके अन्दर बोलने की आदत पड़ जाएगी!"

यह सलाह देकर बूढ़ा अपना लकड़ी का गट्ठर सर पर रख कर अपने रास्ते चला गया।

पांगो यह सलाह पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह नगर की ओर तेजी के साथ बढ़ा चला जा रहा था। रास्ते में एक जगह उसे घास चरता हुआ एक बकरा दिखाई दिया। पांगो उसके समीप पहुँचा और उसके सींग पकड़ कर धीरे से हिला कर बोला- "सुनो, मैं तुम को युवराज के पास ले जाऊँगा। एक बार अपना गीत तो सुनाओ।"

बकरा अपना मुँह खोल कर कर्कश स्वर में चिल्ला उठा- "बा, बा, बे!"

पांगो ने अपने मन में सोचा कि यह कंठ ध्वनि युवराज के सुनने लायक़ नहीं है!" यों विचार कर वह थोड़ी दूर आगे बढ़ा। इस बार उसे क्रमशः एक गधा, एक मुर्गी, और एक सुअर दिखाई पड़े। पांगो ने उनकी खुशामद करके उन से पूछा- "तुम लोग अपना एक छोटा सा गीत गाकर सुना दो।"

तीनों प्राणियों ने उत्साह में आकर चिल्लाना शुरू किया। पांगो ने सोचा कि ये ध्वनियाँ युवराज के सुनने लायक़ नहीं हैं। यों विचार करते हुए वह थोड़ा और आगे बढ़ा। तब उसे एक मोर दिखाई दिया।

पांगो ने मोर से कहा- "तुम को मैं युवराज के पास ले जाऊँगा। उनसे क्या तुम कुछ कहना चाहोगे ?

मोर ने अपना सर उठा कर शान से पांगो की ओर देखा और कहा- "मुझे अपनी तरफ़ से युवराज से कुछ कहने को नहीं है। पर इतना मैं कह सकता हूँ कि अगर मैं अपना मुँह खोल कर गाना शुरू कर दूँ तो सब लोग तन्मय होकर अपने सिर हिलाने लग जायेंगे।" यों जवाब देकर वह गाने लगा ।

मोर का गीत सुनकर पांगो खुशी से नाच उठा। उसे लगा कि मोर की कंठ ध्वनि युवराज के सुनने योग्य है ।

इसके बाद पांगो सीधे राजा के पास गया और बोला- "महाराज, मैं ने युवराज के गूंगेपन के बारे में सुना है। इस पर विचार करके उनके गूंगेपन को दूर करने का रहस्य जान गया हूँ। इसलिए आप कृपया एक प्रतियोगिता का प्रबंध करके अच्छे ढंग से गाने वालों को उत्तम पुरस्कार दीजिए ।"

राजा ने पांगो की बात मान ली। प्रतियोगिता के समय राजा, रानी, और उनका परिवार भी सभा भवन में आ गये ।

पांगो गूंगे युवराज को समीप की एक झाड़ी की ओट में ले गया और बोला- "इस वक्त जो प्रतियोगिता होने वाली है, उसमें मेरे परिचित तीन पशु और दो पक्षी भाग लेने जा रहे हैं। तुम उन के गीतों को सुनो, उन में से जो गीत तुम्हें पसंद आ जाये, उसका अनुकरण करते हुए तुम्हें गाना होगा ।"

सब से पहले गधा, इसके बाद क्रमशः बकरा, मुर्गी और सुअर ने अपने गीत सुनाये, पर वे एक ही गीत गाकर चुप न रहे। अंत में चारों अपने स्वर मिला कर गा उठे और श्रोताओं के कान बंद करने लायक़ वातावरण बना दिया।

उस समय थोड़ी दूर रह कर उनके गीत सुनने वाला मोर आगे आया और अपना मुँह खोल कर गाने लगा। उसकी कंठ ध्वनि के माधुर्य पर सब लोग तन्मय हो उठे और अपना सिर हिला कर झूमने लगे।

तभी झाड़ी की ओट में से गूंगा युवराज मोर का अनुकरण कर गीत गाते हुए बाहर आ निकला। उस दृश्य को देख राजा और रानी के साथ सब लोग परमानंदित हो उठे। मोर भी युवराज की कंठ ध्वनि पर मुग्ध हो उठा और वह फिर एक बार गाने का प्रयत्न करने लगा। पर उसके कंठ से फिर वैसा मधुर गीत नहीं निकला, बल्कि सिर्फ़ 'केक्' जैसी कर्कश ध्वनि निकली।

इस पर मोर चिल्ला उठा- "यह सब धोखा है, दगा है! किसी ने मेरी कंठ ध्वनि को गायब कर दिया है।"

राजा ने एक बार मोर की ओर दया भरी दृष्टि से देखा, फिर पांगो से बोले- "तुम ने युवराज के प्रति जो उपकार किया है उसके प्रति मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ। इस के लिए मैं तुम्हें अवश्य पुरस्कार दूँगा। पर तुमने मोर के प्रति जो अपकार किया है, इस केलिए तुम्हें दण्ड भोगना पड़ेगा।"

इसके बाद वे मोर की ओर मुड़ कर बोले- "अपनी मधुर कंठ ध्वनि से वंचित होने वाले मोर पक्षी की जाति में तुम अत्यंत सुंदर पक्षी के रूप में चिर काल तक शाश्वत यश को प्राप्त करोगे।"

इस प्रकार गरीब पांगो धनवान बन बैठा। गूंगा युवराज बोलने लगा। भूरे रंग तथा छोटे पंखों के साथ देखने में भद्दा लगने वाला मोर सुंदर आकृति पाकर पक्षियों का सिरमौर बन गया।
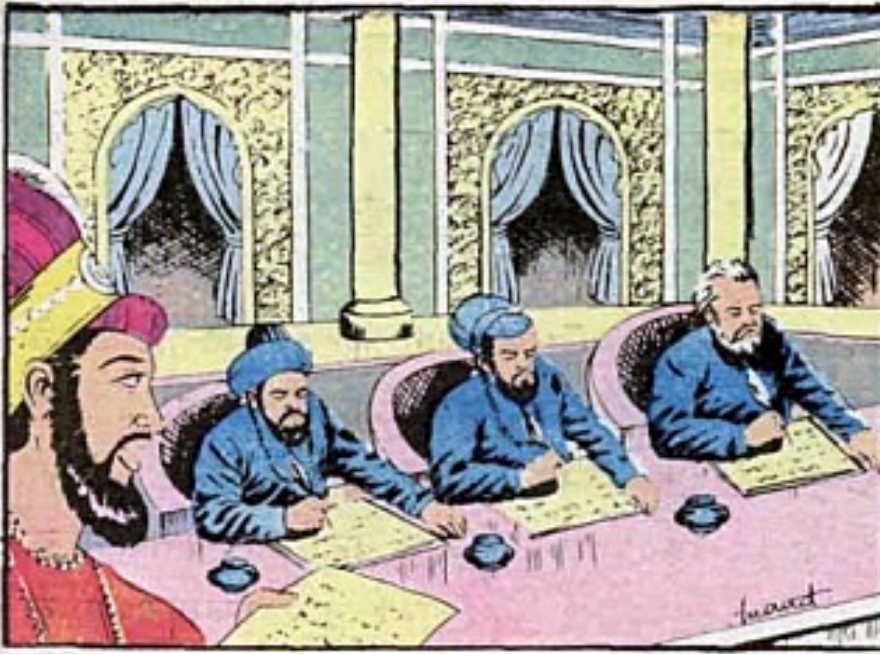
औरंगज़ेब

मुगल सम्राट शाहजहाँ के चार बेटे थे— दारा, शुजा, मुराद और औरंगज़ेब । शाह जहाँ चाहते थे कि उनके बाद उनका सबसे बड़ा बेटा दारा मुगल साम्राज्य की गद्दी पर बैठे ।

दारा एक धार्मिक, विद्वान और नेक व्यक्ति था । उसने वेदों और उपनिषदों का फारसी में अनुवाद भी किया था ।

शाहजहाँ सन् १६५१ ईसवी में बीमार हो गये । उनकी बीमारी के दिनों में देख भाल करने वाला केवल दारा ही उनके पास था । बाकी तीनों बेटे बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में अलग-अलग प्रदेशों में राज-काज देख रहे थे । बादशाह की बीमारी की खबर मिलते ही तीनों मुगल राज्य पर अधिकार करने की योजना बनाने लगे ।

उस समय शुजा बंगाल का शासन देख रहा था। उसने अपने को बादशाह घोषित कर दिया और सेना को आगरा की ओर कूच कर दिया। शाहजहाँ ने दारा के पुत्र सुलेमान सिको को सेना के साथ इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। वाराणसी के पास दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। शुजा हारकर वापस बंगाल चला गया।

इस समय औरंगजेब दक्कन में था। उसने मुराद से मिल कर यह योजना बनाई कि दारा और शुजा को मार कर मुगल साम्राज्य को वे दोनों आधा-आधा बाँट लेंगे। भोले मुराद ने औरंगजेब की बात पर विश्वास कर लिया। दोनों ने मिल कर दारा पर हमला कर दिया।

आगरा के समीप समुघर में दोनों सेनाओं में भारी लड़ाई हुई। राजपूतों ने दारा की ओर से युद्ध किया। दारा का हाथी युद्ध में घायल हो गया, इसलिए वह हाथी पर से नीचे गिर गया। दारा के सैनिकों ने समझा कि दारा नीचे गिर कर कुचल गया है, इसलिए वे भयभीत हो तितर-बितर हो गये।

औरंगज़ेब ने आगरे का क़िला घेर लिया और क़िले के अन्दर जल ले जाने से रोक दिया। तब गर्मी का मौसम था। पानी के अभाव में शाहजहाँ के सैनिक युद्ध न कर सके। इस प्रकार आगरा के क़िले पर औरंगज़ेब का कब्ज़ा हो गया।

औरंगज़ेब ने तब क़िले में घुस कर शाहजहाँ को बन्दी बना लिया। इसके बाद औरंगज़ेब अपनी और मुराद की सेना के साथ दिल्ली की ओर बढ़ा। दिल्ली आते समय रास्ते में मथुरा के पास उसने धोखे से युद्ध में सहायता देने वाले मुराद को बन्दी बना लिया और उसे मरवा डाला। उसकी क्रूरता और द्रोह ने सबको आश्चर्य में डाल दिया।

दिल्ली में प्रवेश करते ही औरंगज़ेब ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया। उसने आलमगीर की उपाधि धारण की और मुगल साम्राज्य का विस्तार करने में कोई कसर न छोड़ी। फिर भी, अपनी धार्मिक कट्टरता, और शंकालु प्रवृति के कारण मुगल साम्राज्य के पतन का कारण भी यही बना।

दारा औरंगज़ेब से बच कर पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर भाग निकला और अपने मित्र जिवान खाँ के आश्रय में जीवन बिताने लगा। लेकिन दुर्भाग्य से उसके मित्र ने ही औरंगजेब का विश्वास प्राप्त करने के लिए दारा को उसके हवाले कर दिया। औरंगज़ेब ने बड़ी क्रूरता से उसकी हत्या करवा दी।

शुजा आरकान की पहाड़ियों की ओर भाग गया। कहा जाता है कि वहाँ के निवासियों ने उसकी हत्या कर दी। दारा का पुत्र ज़हर खिला कर मार डाला गया। इस प्रकार औरंगज़ेब ने मुगल सल्तनत के सभी वारिसों को खत्म कर दिया।

यद्यपि अब मुगल साम्राज्य पर उसका निष्कण्ट राज्य था, फिर भी उसे एक क्षण के लिए भी मानसिक शान्ति नहीं मिली। वह अपने आदमियों को भी अपना हमदर्द न बना सका। शीघ्र ही उसके सारे राज्य में विद्रोह फैल गया।

झूठी तारीफ़ की कीमत

उमर बगदाद के पास ही केरमानसा में रहता था। आवारागर्दी और धोखेबाजी के लिए वह शहर भर में कुख्यात था। यों बातचीत और व्यवहार से सज्जन की तरह लगता लेकिन अचानक चालाकी से लोगों को धोखे में डाल कर पैसे ऐंठ लेता। शहर के कितने ही चतुर व्यापारी भी इसकी चाल के शिकार बन चुके थे।

बगदाद का मुस्तफा नाम का व्यापारी व्यापार के काम से अक्सर केरमानसा आया रहता था। यों वह काफी समझदार और साहसी युवक था, लेकिन अपनी प्रशंसा सुन कर अक्ल से अन्धा बन जाता था।

उमर ने इस व्यापारी के साथ जान-पहचान करना चाहा। वह मुस्तफा की कमजोरी को जानता था। इसलिए बाजार में एक दिन उससे मिल कर बोला— "आप तो यहाँ के व्यापारियों के सिरमौर हैं। आप के पिता, दादा तथा परदादा सभी के सभी रईस थे। आप एक बड़े खान्दान के हैं, यह आप के तौर-तरीके से साफ मालूम पड़ जाता है।"

अपनी तारीफ सुन कर मुस्तफा फूल कर कुप्पा हो गया और उमर को सच्चा दोस्त समझ बैठा। तब से उमर बराबर मुस्तफा की झूठी तारीफ कर उसे खुश कर दिया करता। धीरे-धीरे दोनों में काफी घनिष्ठता हो गई और मुस्तफा उमर पर बहुत विश्वास करने लगा।

किसी कारणवश कुछ दिनों तक मुस्तफा केरमानसा नहीं आ सका। तब उमर उससे मिलने के लिए बगदाद चला गया। मुस्तफा उमर को देख बहुत खुश हुआ और बोला- "दोस्त! तुम बहुत तकलीफ़ उठा कर मुझसे मिलने आये हो। तुम्हें कुछ दिनों तक मेरा मेहमान बन कर रहना पड़ेगा।"

मुस्तफा की बातें सुन कर धूर्त उमर मन ही मन बड़ा खुश हुआ लेकिन झूठमूठ चिंता

दिखाते हुए बोला- "प्यारे दोस्त ! पिछले कुछ दिनों से तुम केरमानसा नहीं आये, इसलिए मुझे चिंता हो गई और मैं घबरा कर तुम्हारा हाल जानने चला आया ।"

उमर की खुशामदी बातों ने मुस्तफा पर जादू की तरह असर किया। उमर की बातों से उसे बहुत आनन्द का अनुभव हुआ। इसने उस धूर्त दोस्त के सत्कार में कुछ भी कसर न उठा रखी।

उमर ने एक महीने तक मुस्तफा के घर बड़े आराम के दिन बिताये। एक दिन जब मुस्तफा अपने करीबी दोस्तों और खास ग्राहकों के साथ बैठा हुआ था, उमर ने आकर कहा- "अब मैं अपने घर चलूँगा। आप के यहाँ रहते बहुत दिन हो गये। आप की आज्ञा चाहता हूँ। और हाँ ! मेरी थैली भी घर से मंगवा दीजिए ।"

मुस्तफा ने उदास होकर कहा- "कुछ दिन और मेरा मेहमान बन कर रहें तो मुझे बड़ी खुशी होगी। जाने की इतनी जल्दी भी क्या है ?......लेकिन थैली के बारे में क्या कह रहे हैं ? यह कैसी थैली है ?"

"दोस्त ! आप काफ़ी भुलक्कड़ आदमी मालूम पड़ते हैं ! आप के घर पहुँचते ही मैंने आप को एक हजार सोने की अशर्फियों की थैली सुरक्षित रखने के लिए दीं थी। क्या याद नहीं है ?" उमर ने आश्चर्य दिखाते हुए कहा।

"आप कैसी बातें करते हैं ! आपने तो कभी कोई थैली नहीं दी ! मुझे तो बड़ा आश्चर्य हो रहा है।" मुस्तफा अपने दोस्त की बात पर बड़ा हैरान हो रहा था ।

धूर्त उमर मुस्तफा की बात सुन कर बनावटी हैरानगी और घबराहट से सब की ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देखने लगा मानों वह बिल्कुल सच कह रहा हो और मुस्तफा झूठ बोल रहा हो ।

उनलोगों ने मुस्तफा से कहा- "हो सकता है, दोस्त से बहुत दिनों के बाद मिलने की खुशी में थैली इधर-उधर रख दी हो और तुम्हें याद न हो। ढूँढ़ कर देखो ! घर में ही कहीं पड़ी होगी ।"

मुस्तफा ने बड़े विश्वास के साथ कहा- "धन के मामले में भूलने या भूल करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। यह आदमी जान-बूझ कर मेरे

साथ धोखा कर रहा है ।"

यह सुनते ही उमर ज़ोर से चिल्ला उठा- "हाय ! हाय ! मेरी हज़ार अशर्फ़ियाँ इसने हड़प लीं । दस-बीस भी नहीं—एक दम एक हज़ार ! मैं लुट गया । मैंने दोस्त समझ कर इस पर नाहक हीं विश्वास किया !"

यह सब नाटक देख कर मुस्तफा को विश्वास हो गया कि उमर सचमुच दुष्ट स्वभाव का है और इसके बारे में केरमानसा के अपने मित्र ठीक ही कहते थे । उसे उमर की दुष्टता पर बहुत क्रोध आया । इसलिए उसने गरजते हुए कहा— "मैंने तुम जैसे दुष्ट और दगाबाज आदमी को दोस्त बना कर बहुत भारी भूल की है । अब तुम मेरे गुस्से को न भड़काओ और चुपचाप यहाँ से चले जाओ ।"

उन दोनों के झगड़े को देख कर कुछ लोग और इकट्ठे हो गये । बगदाद शहर में मुस्तफा ईमानदार और इज्जतदार व्यक्ति माना जाता था । लेकिन पिछले एक महीने में मुस्तफा ने ही सबको यह बताया था कि उमर उसका विश्वासी दोस्त होने के साथ-साथ एक प्रतिष्ठित और ईमानदार व्यक्ति भी है । इसलिए किसी को यह शक नहीं हुआ कि उमर दगाबाज़ी कर रहा है । बल्कि उलटा सब को मुस्तफा पर ही शक हुआ ।

मुस्तफा को यह आरोप बहुत अपमान जनक लगा । बल्कि उसे इस बात पर आश्चर्य भी हुआ कि लोग उसे ही झूठा समझ रहे हैं और उसके

झूठे और धूर्त दोस्त उमर को शराफत का पुतला मान रहे हैं ।

वहाँ जमा हुए लोगों में मुस्तफा का एक घनिष्ठ मित्र भी था । वह जानता था कि मुस्तफा झूठ नहीं बोल सकता और वह उमर की धूर्तता का शिकार हो गया है । उसने मुस्तफा की सहायता करने के लिए एक चाल चली ।

उसने उमर के पास जाकर कहा— "वैसे हर आदमी कुछ न कुछ भूल अवश्य करता है ! तुमने भी एक भूल की है । तुमने हज़ार अशर्फियों की थैली मुस्तफा को नहीं—मेरे हाथ में दी थीं । लेकिन तुम यह भूल गये थे । अब शान्त हो जाओ । जब सब लोग चले जायेंगे तो तुम्हारी थैली वापस मिल जायेगी ।

लेकिन, अपनी भूल तो तुम्हें मालूम हो गई है न ?''

मुस्तफा ने सोचा कि शायद उमर थैली के लालच में 'हाँ' कह देगा और तब लोगों की नज़र में झूठा साबित हो जायेगा। उसने अपने मित्र की बुद्धिमानी की दाद दी और इज्ज़त बचाने में सहायता के लिए धन्यवाद किया।

लेकिन उमर ने कच्ची कौड़ी नहीं खेली थी। उस धूर्तराज के सामने मुस्तफा का मित्र अभी बच्चा था। उसे अपनी चालाकी के कारण लेने के देने पड़ गये ।

उमर ने बिना सोचे ही झट उत्तर दिया- ''मैंने कोई भूल नहीं की है महाशय ! मुझे यह जान कर खुशी और सन्तोष हुआ कि आप अपने दोस्त की तरह सफेद झूठ नहीं बोल गये और आप को दी हुई मेरी दूसरी थैली सुरक्षित है। आखिर बगदाद शहर के सभी लोग मुस्तफा की तरह धूर्त और झूठे नहीं हो सकते। चलिये, मेरी दूसरी थैली तो वापिस कीजिए ।''

यह सुन कर मुस्तफा और उसका मित्र—-दोनों उमर की धूर्तता पर अवाक् रह गये।

लाचार होकर मुस्तफा के दोस्त को एक हज़ार अशर्फियाँ देनी पड़ी। इससे लोगों का यह शक और पक्का हो गया कि मुस्तफा झूठ बोल रहा है और उमर की अशर्फियाँ पचा जाना चाहता है ।

वहाँ का वातावरण देख कर मुस्तफा समझ गया कि लोगों को सच्चाई समझाना अब कठिन है। इसलिए उसने भी उमर को एक हज़ार अशर्फियाँ दे दीं ।

उमर मुफ़्त की दो हज़ार अशर्फियों की कमाई लेकर अपनी चालाकी पर खुश होता हुआ केरमानसा की ओर चल पड़ा ।

जब अगली बार मुस्तफा केरमानसा गया तो उसके परिचित लोगों ने पूछा- ''क्या अपने गहरे मित्र उमर से मिल चुके ?''

इस पर मुस्तफाने मुस्कुराते हुए कहा- ''अब मैंने हज़ार अशर्फ़ियाँ देकर यह सीख लिया है कि झूठी तारीफ़ करने वाला कभी भी सच्चा दोस्त नहीं हो सकता। यह मैं अब जीवन भर नहीं भूलूँगा ।''

कूप-मण्डूक

कृपानन्द राजगृह गुरुकुल के आचार्य थे। वे वर्ष में छः मास शिष्यों को शिक्षा देते और शेष समय देश के सभी भागों में घूम कर उपदेश करते।

एक बार वे एक गाँव में उपदेश करने गये। गाँव वालों ने उनका भव्य स्वागत किया। रात्रि में राम मन्दिर के मण्डप में उनके उपदेश का इन्तजाम किया गया। गाँव के सभी लोग—क्या बूढ़े और क्या जवान क्या स्त्री और क्या पुरुष—सब के सब उनके उपदेश सुनने के लिए उमड़ पड़े।

कृपानन्द ने उपदेश का आरम्भ भजन से किया। उन्होंने भजन इस लय से गाया कि सभी झूम उठे। उसके बाद हनुमान जी का रोचक प्रसंग सुनाने लगे। सभी लोग तन्मय होकर सुन रहे थे। तभी अचानक गाँव का सेठ उठ कर खड़ा हो गया।

तभी कृपानन्द ने प्रश्न किया- "कहिये, आप को कोई शंका या सन्देह है? अभी तो उपदेश सुन लीजिए। अन्त में शंका-समाधान किया जायेगा।"

"वैसे तो मेरे मन में बहुत शंकाएं हैं। लेकिन अभी एक शंका बहुत बड़ी है। वह यह है कि घर की तिजोरी तथा घर के अन्य कीमती सामानों की सुरक्षा का भार नौकरों पर छोड़ना चाहिये या नहीं?" सेठ इतना कह कर बीच में ही उपदेश छोड़ कर घर चला गया।

यह घटना गाँव वालों के लिए नयी नहीं थी। सब को मालूम था कि सेठ को उपदेश, भजन और सत्संग में कोई दिलचस्पी नहीं है, सिर्फ धन इकट्ठा करने और उसकी निगरानी करने में है। इस बात पर कृपानन्द ने भी विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उन्हें मालूम था कि उपदेश या सत्संग-भजन सुनते-सुनते बहुत लोग उठ कर जाते ही रहते हैं, इसमें कोई विशेष बात नहीं है।

अवध प्रसाद

"तुम्हारी चिन्ता प्रशंसनीय है, वत्स ! और तुम्हारी सलाह की भी सराहना करता हूँ। लेकिन अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि समाज में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनको उपदेश द्वारा धर्म और सच्चाई की ओर मोड़ना असम्भव होता है। पत्थर पर तीर मारना मूर्खता है, साँप को दूध पिलाना व्यर्थ है और मरुस्थल में बीज डालना बीज को नष्ट करना है। कुछ लोगों पर उपदेश का प्रभाव भी ऐसा ही पड़ता है। ये लोग अपने स्वार्थ के दायरे से बाहर निकलेंगे तो उनका जीवन ही खत्म हो जायेगा। ये कूप मण्डूक यानी कुएं के मेढ़क के समान होते हैं। जिनके लिए कुएं जैसा धन या तन सुख का छोटा दायरा ही सबकुछ होता है। कुएं के बाहर चाहे सागर ही क्यों न हो, लेकिन उसे यकीन नहीं होता। उपदेश अच्छे बीज के समान है जो श्रद्धालु ह्रदय के उपजाऊ खेत में पड़ कर लहलहाती फसल बन जाता है। जिस ह्रदय में श्रद्धा न हो वह चट्टान के समान है जिस पर बीज कभी फूल-फल नहीं दे सकता।"

लेकिन कृपानन्द के साथ आये हुए उनके शिष्य चंद्रशेखर के लिए यह एक खास बात थी। उसे इस बात की हैरानगी थी कि उस व्यक्ति में इतनी भी श्रद्धा-भक्ति नहीं है कि घड़ी-दो घड़ी शान्ति से बैठ कर भगवान की चर्चा सुन सके।

इसलिए उपदेश खत्म होते ही चंद्रशेखर ने अपने आचार्य कृपानन्द से पूछा- "आपने उस व्यक्ति को घर जाने से क्यों नहीं रोका ? उसमें तो रत्ती भर भी इश्वर में विश्वास नहीं मालूम होता। ऐसे लोगों में श्रद्धा-भक्ति पैदा करना आप जैसे आचार्यों और उपदेशकों का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।"

इतना कह कर कृपानन्द चुप हो गये।

शिष्य तन्मय होकर अपने गुरु की बात सुन रहा था। गुरु के मौन होते ही उसने एक सवाल किया- "लेकिन गुरुवर ! उपदेश से ही श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा जगाने का काम..."

शिष्य की शंका को समझ कर बीच में ही काटते हुए बोले—

"श्रद्धा भगवान की कृपा से जगती है वत्स ! जब उनकी कृपा होगी तो वे ऐसी परिस्थिति का निर्माण कर देंगे जिसमें श्रद्धा सहज रूप से जग जाती है। मनुष्य के जीवन में पीड़ाएं इसीलिए आती हैं—श्रद्धा को जगाने के लिए। लेकिन यदि यह श्रद्धा नहीं है तो हम लोगों के उपदेश व्यर्थ हैं।"

"हमारे सहपाठी बोधानन्द का भी यही अनुभव है। यदि सुनना चाहते हो तो मैं उनकी कथा सुना सकता हूँ।"

"बड़ी कृपा होगी गुरुवर ! मैं अवश्य सुनना चाहता हूँ, क्योंकि मैं जीवन में ऐसे ही लोगों पर अपने उपदेश का प्रयोग करना चाहता हूँ।" शिष्य जिज्ञासा प्रकट की।

"तब तो अवश्य सुनो, क्योंकि बोधानन्द ने भी इस कार्य को चुनौती के रूप में स्वीकार किया था।"

कृपानन्द कहानी सुनाने लगे— बोधानन्द ने गुरुकुल से अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद अपने घर पर किसी शिष्य को नहीं रखा और सारा समय उपदेश में बिताने लगे।

एक बार वे उपदेश देने के लिए किसी गाँव में पहुँचे। वहाँ के लोगों ने लालादीन के बारे में बताते हुए कहा कि यह एक नम्बर का शकी, लालची, कंजूस और बेईमान आदमी है। यह लोगों को कभी शुद्ध सामान नहीं देता और सब का हिसाब बढ़ा कर लिखता है। गरीबों की लाचारी और बेबसी से लाभ उठा कर उन्हें कम
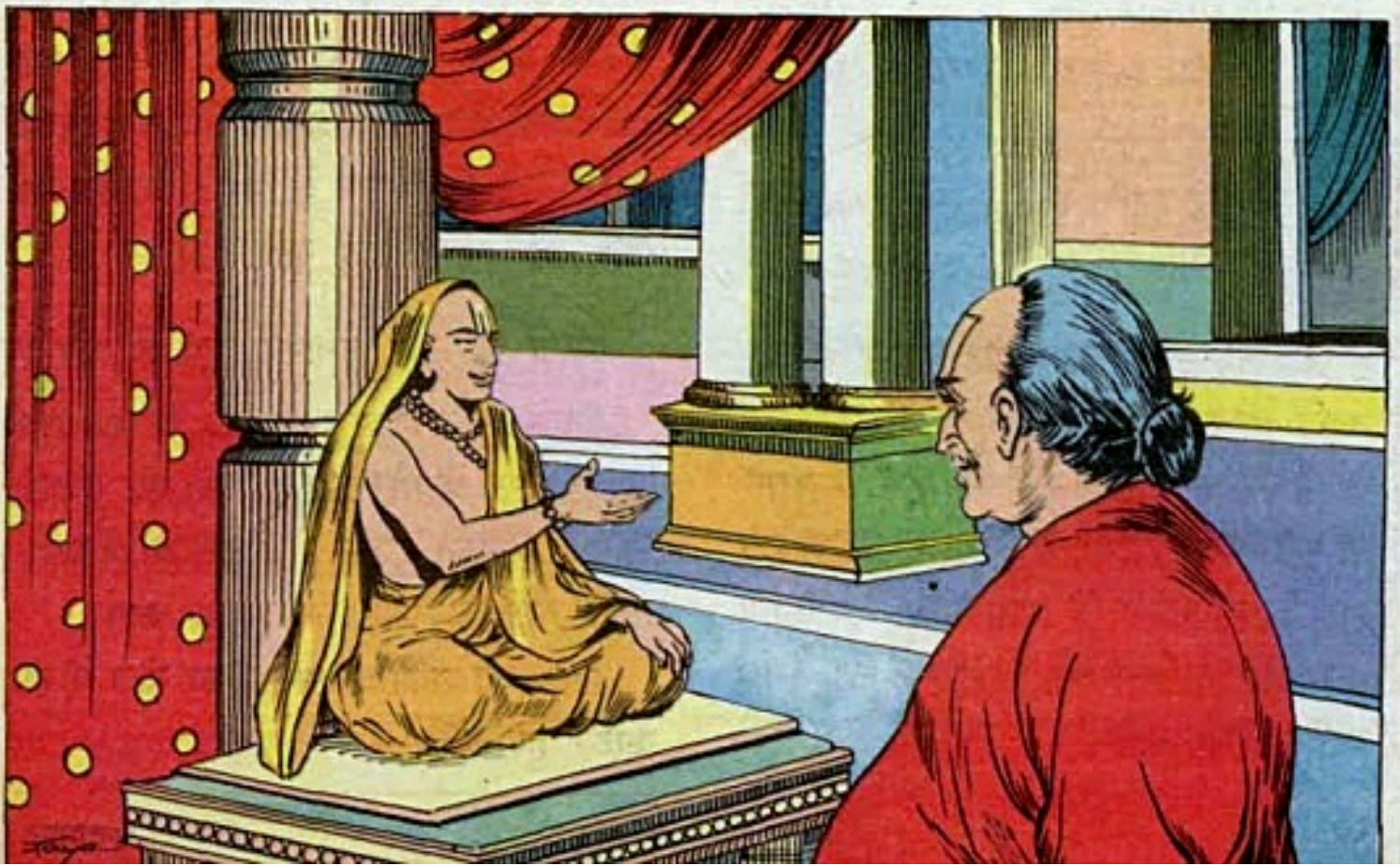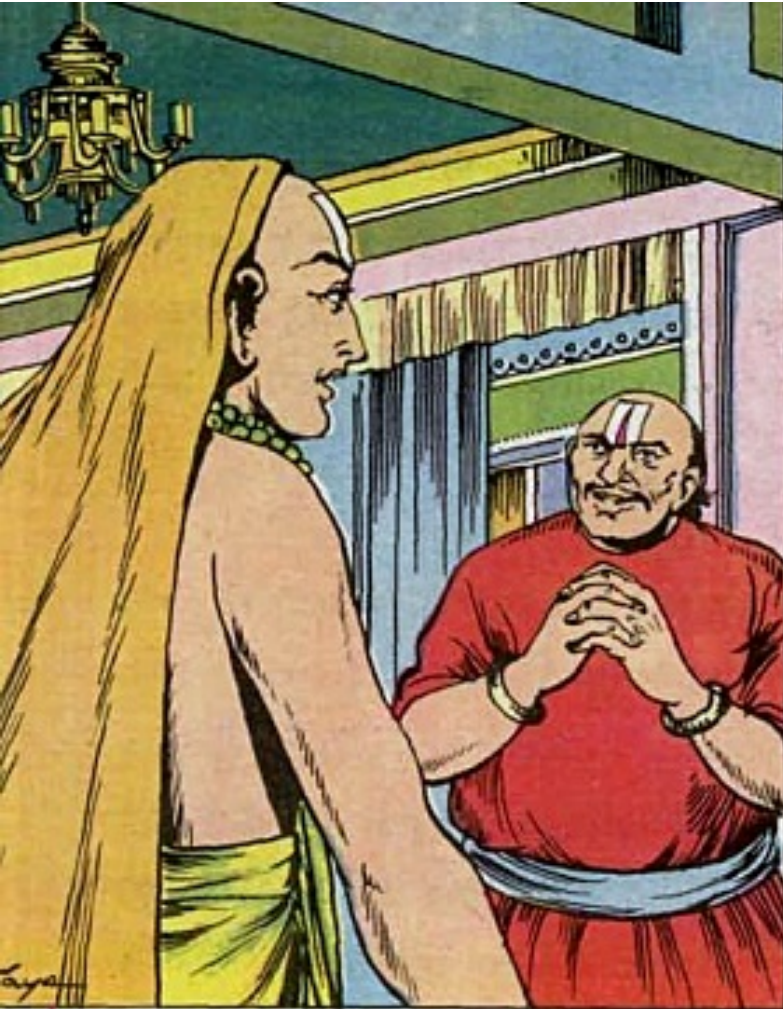
पैसे देकर ज्यादा ऐंठ लेता है। दान-धरम के नाम पर पैसा खर्च करना तो दूर, मुफ़्त का उपदेश सुनने भी इसलिए नहीं आता कि वहाँ सच बोलने के लिए कहा जायेगा और आरती में एक पैसा देना पड़ेगा।

यह सुन कर बोधानन्द का उत्साह बहुत बढ़ गया। वे प्रसन्न हो कर बोले- "मेरा काम तो ऐसे ही लोगों के मन में श्रद्धा-विश्वास पैदा कर धर्म और सच्चाई के मार्ग पर लाना है। यदि वह नहीं आता तो मैं उसके घर जाऊँगा। आप लोग कृपा करके उसके घर का मार्ग बता दीजिए।"

बोधानन्द लालादीन के घर पर जैसे ही पधारे, उन्होंने बोधानन्द का भक्तिपूर्वक स्वागत किया और कहा- "स्वामि! मैं स्वयं आप के दर्शन के लिए लालायित था। आपने मेरी कुटिया पर पधार कर बड़ी कृपा की है। मैं हृदय से आप का कृतज्ञ हूँ। कृपया आशीर्वाद दीजिए कि हमारी समृद्धि में दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की हो।"

यह सुन कर बोधानन्द ने कहा- "वत्स! ईश्वर की कृपा से तुम्हें किस चीज़ की कमी है! तो फिर लालच के कारण और धन क्यों एकत्र करना चाहते हो? एक दिन तुम्हें संसार छोड़ कर जाना ही पड़ेगा। यह धन-दौलत भी तुम्हें यहीं छोड़ना पड़ेगा। जो धन तुम्हारा सब दिन साथ नहीं दे, वैसे धन के लिए झूठ और धोखा करने की क्या आवश्यकता है। सच्चाई से जितना धन मिल जाये उसी में सन्तोष करो और आवश्यकता से अधिक धन आ जाये तो दान-पुण्य करो, दूसरों की सहायता करो।"

"लेकिन ऐसा करने से मेरा क्या लाभ होगा महाराज!" लालादीन ने व्यपारी की भाषा में सवाल पूछा।

बोधानन्द ने सोचा कि व्यापारी को व्यापार की भाषा में ही समझाना चाहिये। इसलिए उन्होंने कहा— "दान-पुण्य करने से भगवान तुम्हारे लिए स्वर्ग में विशेष स्थान सुरक्षित रखेंगे। वहाँ तुम्हें यहाँ से हजारों गुना अधिक सुख अनन्त काल तक मिलता रहेगा।"

इसपर सन्देह करते हुए लालादीन ने कहा— "लेकिन स्वामि! हमारा व्यापार तो

बहुत छोटा है । इस छोटे-से व्यापार में भी हिसाब रखते समय भूलें हो जाती हैं । एक का जमा या खर्च गलती से दूसरे के खाते में चढ़ जाता है ! इतनी बड़ी दुनिया में तो एक ही नाम के हजारों व्यक्ति होंगे । ऐसी हालत में कैसे भरोसा करें कि मेरे खाते का दान-धरम किसी दूसरे के खाते में नहीं चढ़ जायेगा !

"आपने यह भी कहा महाराज ! कि दान-धरम करने से स्वर्ग में मेरे लिए विशेष स्थान रखा जायेगा । लेकिन यह तो किसी को मालूम नहीं कि कौन कब मरेगा और मर कर कहाँ जायेगा । फिर इसकी भी क्या गारण्टी कि पहले मरनेवाला आदमी उस स्थान पर अपना कब्ज़ा नहीं जमायेगा ।

"यहाँ पर अपना व्यापार स्वयं देखता-भालता हूँ, फिर भी मेरे नौकर-चाकर चोरी और धोखा करते हैं । भगवान की दुनिया तो बड़ी विशाल हैं । उन्होंने सब का हिसाब-किताब रखने के लिए न जाने कितने नौकर-चाकर रखे होंगे ! उनमें न जाने कितना भ्रष्टाचार होगा !

"इसलिए अच्छा तो यही होगा महानुभाव ! कि जब मैं मर कर भगवान के पास जाऊँगा तो स्वयं ही उनसे बात चीत कर स्वर्ग में अपने स्थान का प्रबन्ध कर लूंगा । इस मामले में आप को चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं ।"

यह सब बोधानन्द ध्यान से सुनते रहे । सच तो यह था कि बोधानन्द उपदेश देने गये थे, किन्तु उन्हें लालादीन के उपदेश सुनने पड़े ।

ये सोचते रहे कि इसके नीच स्तर के तर्कों का उत्तर कैसे दें । किन्तु उन्हें कोई विचार न सूझा और उन्होंने यही निर्णय किया कि इसका विचार कूप मण्डूक की तरह है । यह धन के कुएं से बाहर निकलना ही नहीं चाहता । अभी इस पर भगवान की कृपा नहीं हुई है, इसीलिए श्रद्धा और विश्वास का झरना नहीं फूटा है । अन्त में बोधानन्द ने भी यही निर्णय किया कि ऐसे लोगों पर समय नष्ट करना मूर्खता है । और यह सोच कर वे दूसरे गाँव के लिए चल पड़े ।

पीहर-रोग

माता प्रसाद की पत्नी कुंती देवी की तबीयत अक्सर खराब रहा करती थी। धीरे-धीरे वह बहुत दुर्बल होती गई और अन्त में उसने खाट पकड़ ली। वैद्य-हकीम से बहुत इलाज हुआ लेकिन कोई दवा नहीं लगी। अन्त में, माता प्रसाद बहुत निराश हो गये।

उनके पड़ोसी गाँव में एक बड़े भारी ज्योतिषी रहते थे। जो भी परेशान व्यक्ति भक्ति भाव से दक्षिणा और पान-सुपारी लेकर उनके पास जाते, ज्योतिषी उनके मन की बात समझ जाते और उनकी परेशानी दूर करने के उपाय बता देते। यदि उनकी बात को कोई एक बार में नहीं समझता तो उनका तेवर चढ़ जाता और उसे कुछ खरी-खोटी सुना कर ही फिर दुबारा समझाते। उनकी इस आदत से गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति उनके पास जाने में घबराते, क्योंकि वे किसी की भी परवाह नहीं करते थे।

कई मित्रों ने माता प्रसाद को सलाह दी कि अपनी पत्नी के बारे में उस ज्योतिषी से मिले, वे सही उपाय बता देंगे, लेकिन माता प्रसाद को डर था कि कहीं वे इनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध सब के सामने कुछ कह न दें। फिर भी, पत्नी की बिगड़ती हुई हालत को देख कर उन्हें एक दिन ज्योतिषी के पास जाना ही पड़ा।

इनके जाते ही ज्योतिषी ने कहा- "तुम्हारा नाम माता प्रसाद है और तुम अपनी पत्नी के रोग के बारे में पता करने आये हो। तुम्हारी पत्नी ने बीमारी से कमजोर होकर खाट पकड़ ली है। लेकिन अपने घमण्ड के कारण तुमने आने में बहुत देर कर दी है।"

माता प्रसाद ने इस ज्योतिषी के बारे में जैसा सुना था, वैसा ही पाया। उसने सभी बातें सच्ची बता दीं।

माता प्रसाद ने विनय पूर्वक निवेदन किया- "आप ने बिल्कुल सच बताया महाराज ! इसका उपाय भी बता दें तो बड़ी कृपा होगी।

दवा-दारु से कोई लाभ नहीं हुआ महाराज !"

मुझे मालूम है। तभी तुम निराश होकर मेरे पास आये हो।

"तुम्हारी पत्नी को कोई रोग नहीं है माता प्रसाद ! तुमने प्रकृति के सहज प्रवाह को रोकने के लिए एक बाँध-सा बना दिया है। उस बाँध को तोड़ दो। तुम्हारी पत्नी का स्वास्थ्य ठीक हो जायेगा। दवा-दारु पर धन फूँकने से कोई लाभ न होगा।"

इतना कह कर ज्योतिषी ने थोड़ा झल्ला कर कहा- "मेरी बातें तेरी समझ में आ गई या नहीं।"

माता प्रसाद को ज्योतिषी की बातें कुछ भी समझ में नहीं आईं। फिर भी उनके डाँटने-फटकारने के डर से "जी हाँ" कह कर सिर हिला दिया।

घर जाकर उसने ज्योतिषी की बात पर विचार करना शुरू किया। बहुत माथा-पच्ची के बाद उसे एक बात का ख्याल आया। पिछले वर्ष उन्होंने नहर का पानी अपने खेत से होकर पड़ोसी बच्चू सिंह के खेत में जाने से रोक दिया था। नहर का पानी सहज प्रवाह है। उस पर सब का हक है। "मैंने आपसी बैर के कारण बच्चू सिंह के खेत में पानी जाने से रोक दिया था। मेरे खेत के अलावा उसके खेत में पानी ले जाने का कोई और रास्ता नहीं था। यह मेरी वास्तव में भूल थी। ज्योतिषी शायद यही कहना चाहते हैं कि उसके खेत में जाने से जल को नहीं रोकना चाहिए।"

यह विचार आते ही माता प्रसाद ने बच्चूसिंह को बुलवा भेजा और उससे कहा- "पिछले वर्ष मैंने तुम्हारे खेत में नहर का पानी नहीं जाने दिया, इसके लिए खेद है। आपस की छोटी-छोटी बातों पर हमलोगों को ध्यान नहीं देना चाहिये। यदि आपसी प्रेम बनाये रखने के लिए एक दूसरे को थोड़ा-बहुत त्याग करना पड़े तो भी हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिये। यदि आपस में एक दूसरे के बारे में गलत फहमी हो जाये तो आमने-सामने बात कर स्पष्ट कर लेना चाहिये और दूसरों के बहकावे में नहीं आना चाहिये। आजकल के लोग दूसरों के घर

में आग लगा कर हाथ सेंकने में अपनी बुद्धिमानी समझते हैं, इसलिए दूसरों की बातों पर विश्वास करने के पहले हम बहुत सोच-समझ लेना चाहिये। जो हो गया सो हो गया अब से ऐसा नहीं होगा।'' इतना कह कर उसने नौकरों से पानी रोकने वाली मेंड़ कटवा दी।

इसके बाद माता प्रसाद ने यह समझा कि ज्योतिषी ने जैसा कहा है वैसा मैंने कर दिया है। अब कुंती शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगी।

बहुत दिन बीत गये लेकिन कुंती की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। माता प्रसाद को यह भी शक हुआ कि ज्योतिषी की बात उसने पता नहीं ठीक से समझी या नहीं। उसने फिर से ज्योतिषी की बात पर विचार करना शुरू किया, किन्तु कोई हल न निकला। अन्त में, उसने हिम्मत करके एक बार फिर ज्योतिषी के पास जाने का फैसला किया।

माताप्रसाद को देखते ही ज्योतिषी उबल पड़ा- ''तुम फिर आ गये। शायद तुमने मेरी बात ठीक से समझी नहीं। और घमण्ड के कारण सरल भाषा में समझाने के लिए भी तुमने नहीं कहा। अब ध्यान से सुनो।

''तुमने अपना झूठा मान रखने के लिए अपनी पत्नी को कई वर्षों से उसके पीहर नहीं भेजा। अपने माँ-बाप के प्रति उसका प्रेम सहज प्रवाह के समान है जिसे तुमने रोक दिया है। उसके मन पर इसका बहुत बुरा असर पड़ा है। उसकी मानसिक वेदना धीरे-धीरे उसके शरीर में प्रवेश कर गयी और शरीर में कई रोग पैदा हो गये।

''इसका इलाज यही है कि अपनी पत्नी को ससुराल ले जाओ और सबसे मिला कर कुछ दिनों के बाद वापस आ जाओ। तुम्हारी पत्नी का स्वास्थ्य अपने आप सुधर जायेगा।''

माताप्रसाद ने ऐसा ही किया। कुंती देवी अपने माता-पिता तथा भाई-बहनों से मिल कर बहुत प्रसन्न हुई। उसी दिन से उसकी हालत सुधरने लगी और कुछ ही दिनों में भली-चंगी हो गई।

विष्णु पुराण

श्रीमती के स्वयंवर में भाग लेने के लिए अनेक देशों के राजा-महाराजा पधारे। विष्णु के दिये हुए 'हरि-रूप' में नारद भी आ पहुँचे। उनका हरि यानी बानर रूप देख कर वहाँ के उपस्थित लोग हँस पड़े। जब नारद को मालूम हुआ कि विष्णु ने उन्हें बानर रूप दे दिया है, तो वे लज्जा के मारे पानी-पानी हो गये।

श्रीमती ने वरमाला लेकर विष्णु का ध्यान किया। ध्यान करते ही विष्णु वहाँ प्रकट हो गये। श्रीमती ने उनके गले में वरमाला डाल दी और उनके साथ वैकुण्ठ चली गई।

यह सब देख कर नारद को क्रोध आ गया। उन्होंने पर्वत को अपने पक्ष में कर लिया और दोनों अंबरीष पर बरस पड़े। क्रोध से पागल हो नारद अंबरीष को शाप देने ही जा रहे थे कि विष्णु के चक्र नारद पर टूट पड़े।

पर्वत और नारद जान लेकर बैकुण्ठ की ओर भागे। वहाँ श्रीमती को विष्णु के साथ देख कर नारद का क्रोध और भी भड़क गया और उन्होंने विष्णु को शाप दे दिया- "जिस श्रीमती को आपने छल-बल से प्राप्त किया है वह अपहृत हो जायेगी और आप उसके वियोग में तड़पेंगे। मेरा अपमान करने के लिए आप ने मुझे जिसका रूप दिया है, वे ही बानर आप की खोई पत्नी को ढूँढ कर लायेंगे और सहायता के लिए आप उन्हीं की शरण में जायेंगे।"

नारद का शाप सुन कर विष्णु मुस्कुराने

लगे । तभी श्रीमती ने अपना वास्तविक रूप (लक्ष्मी का रूप) ग्रहण कर लिया और विष्णु ने पर्वत तथा नारद की आँखों से माया की पट्टी हटा ली । जब ये मुनि अपनी चेतना में वापस लौटे तो लाज्जित होकर विष्णु के चरणों में गिर पड़े और क्षमा प्रार्थना करने लगे ।

नारद को इस बात की बहुत ग्लानि हुई कि माया के बस में आकर उन्होंने विष्णु को शाप दे दिया । वे उनके चरणों में रो-रोकर पछताने लगे । इस पर विष्णु नारद को सान्त्वना देते हुए बोले— "तुम तो त्रिकाल दर्शी हो । तुम्हें तो मालूम है कि भावी क्या है । फिर इसके लिए दुःख या पछतावा करने की क्या आवश्यकता है ?

"तुम्हारा शाप भी हमारे संकल्प से ही उत्पन्न हुआ है । तुम्हारी वाणी रामावतार में सच होकर रहेगी और इससे लोक-कल्याण ही होगा ।"

इसके बाद उसी समय से अंबरीष की रक्षा के लिए विष्णु ने चक्र को नियुक्त कर दिया ।

दुर्वासा ऋषि में तपोबल का गर्व तो था ही, साथ में, उनमें ईर्ष्या-द्वेष की भावना भी बहुत थी ।

एक बार जब वे अपने आश्रम से बाहर जाने वाले थे, तभी हरि भजन में लीन रहने वाले देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे । दुर्वासा ने नारद से कहा— " कलह रूपी भोजन से तुम्हारा पेट बहुत भर गया है, इसलिए शायद प्रसन्न चित्त दिखाई दे रहे हो !"

नारद ने ऋषि को प्रणाम करके कहा- "ऐसा भोजन तो अभी मिला नहीं है लेकिन भूख जरूर लगी है । अभी हमारी प्रसन्नता का कारण तो यह है कि अभी मैं परम विष्णु भक्त अंबरीष से मिल कर चला आ रहा हूँ । उनकी भक्ति देख कर मन और प्राण आनन्द से झूम उठते हैं ।"

अम्बरीष की प्रशंसा सुन कर दुर्वासा के मन में जलन-सी हुई । उन्होंने सन्देह भाव से पूछा— "क्या अंबरीष इतने बड़े भक्त हैं कि उनके नाम मात्र से आप में आनन्द उमड़

रहा है !"

"निस्सन्देह ऋषिवर ! विष्णु की विशेष कृपा है उन पर। वे राजा होकर भी ऋषि हैं। वे नियमित रूप से द्वादशी व्रत रखते हैं। उनके दर्शन करने के बाद आप भी अनुभव करेंगे कि मैं उनकी झूठी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ। वे सचमुच बहुत महान हैं और विष्णु के परम प्रिय भक्त हैं। आप के दर्शन से वे अपने को कृतार्थ समझेंगे।" इतना कह कर 'नारायण-नारायण' कहते हुए नारद देखते-देखते अंतर्धान हो गये।

नारद की बातों ने दुर्वासा के मन को कुरेद दिया था। उन्होंने मन ही मन सोचा- "देखता हूँ यह कितना बड़ा भक्त है ! मैं इसकी परीक्षा लूगाँ।" और वे तुरत ही अंबरीष से मिलने चल पड़े।

राजा अंबरीष एकादशी और द्वादशी व्रत का नियमवत पालन करके पारण करने ही वाले थे कि दुर्वासा ऋषि के आगमन का समाचार मिला। अंबरीष ऋषि के दर्शन से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विधिवत उनका सत्कार किया और भोजन स्वीकार करने की प्रार्थना की।

दुर्वासा ऋषि ने भोजन का निमंत्रण स्वीकार कर लिया लेकिन स्नान करके बहुत देर से लौटे। इधर द्वादश व्रत के पारण का समय खत्म होने वाला था। यदि अंबरीष समय रहते पारण न करते तो उनका व्रत भंग हो जाता।

लेकिन अतिथि को निमंत्रित करके पहले स्वयं भोजन भी नहीं कर सकते थे। धर्म के अनुसार इसमें भी दोष लगता था। इसलिए वे दुविधा में पड़ गये।

कुछ पंडितों ने यह सलाह दी कि जल का पारण कर लेने से दोष नहीं लगेगा और पारण हो जाने के कारण व्रत भी भंग नहीं माना जायेगा। अम्बरीष ने यह सलाह मान ली।

लेकिन तभी क्रोधाग्नि में जलते और दाँत पीसते हुए दुर्वासा आ पहुँचे और अम्बरीष को गालियाँ देने लगे—

"अरे नीच राजा, पापी, अधर्मी ! तुम अपने को व्यर्थ ही विष्णु का परम भक्त मानते हो !

"क्षमा ? दुर्वासा क्षमा करना नहीं जानता। तुम्हें अपने पाप का फल भोगना ही पड़ेगा। अब तुम्हें मालूम हो जायेगा कि भक्ति बड़ी है या तपस्या की शक्ति।" अहंकार पूर्वक गरजते हुए और अम्बरीष को लात से मारते हुए उन्होंने अपनी जटा विखेर दी। कहते हैं कि दुर्वासा की तपस्या की सारी शक्तियाँ और सिद्धियाँ उनकी जटा में ही रहती थीं। जब वे क्रोध में अपनी जटा झाड़ने लगते तो वे सारी शक्तियाँ क्रियाशील होजातीं और उनके आदेश का पालन करतीं।

तुम्हारा यह अभिमान झूठा है। तुमने मुझे निमंत्रित करके स्वयं भोजन कर लिया! तूने मेरा अपमान करने का साहस कैसे किया! मेरे भय से तीनों लोकों के देवता भी काँपते हैं। अब काल के समान मेरे शाप से तुम्हें कोई नहीं बचा सकता।"

अम्बरीष उनके क्रोध से विचलित नहीं हुए और उनके चरणों में अपना मस्तक रख कर बोले- "मैंने पंडितों के परामर्श से, व्रत भंग होने के डर से, वेदों के नियमानुसार ही केवल जल-पारण किया है। भोजन के लिए मैं आप की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अतः कृपा करके शान्त हो जायें और मुझे क्षमा कर दें।"

उन्होंने क्रोध के आवेश में अपनी एक लम्बी जटा को ज़ोर से झाड़ते हुए योगदण्ड से उसका स्पर्श किया। बस! पलक मारते ही जटा से अग्नि के कण बरसने लगे और आकाश काले धुएं से भर गया। फिर काले धुएं से पर्वत जैसा विशाल एक भयंकर राक्षस प्रकट हुआ। इसका नाम कृत्य था।

प्रकट होते ही कृत्य मारने के लिए अंबरीष पर झपटा। इसके पूर्व कि कृत्य अंबरीष को छूता, सुदर्शन चक्र प्रकट हो गया और आग की वर्षा करने लगा। देखते-देखते कृत्य जल कर भस्म हो गया।

यह दृश्य देख कर दुर्वासा ऋषि अचंभित रह गये। सुदर्शन चक्र कृत्य को मार कर दुर्वासा

ऋषिकी ओर दौड़ा ।

दुर्वासा ने एक और जटा तोड़ कर सुदर्शन चक्र की ओर फेंका । जटा से एक विशाल चट्टान निकली जिसने चक्र के मार्ग को रोक दिया । चक्र के स्पर्श होते ही चट्टान छिन्न-भिन्न हो गई । दुर्वासा ने चक्र को फिर अपनी ओर आते देख कर एक और जटा फेंक दी । इससे सारा आकाश काले मेघों से भर गया और सुदर्शन चक्र उसमें खो गया । किन्तु दूसरे ही क्षण सुदर्शन चक्र की किरणों ने उन बादलों को जैसे जला कर भस्म कर दिया ।

यह देखकर दुर्वासा ऋषि बहुत घबरा गये और भयभीत हो भागने लगे । सुदर्शन चक्र उनका पीछा करने लगा । चक्र की किरणों से दुर्वासा की जटाएं जल कर भस्म हो गयीं और उनके साथ ही उनका सारा तपोबल भी नष्ट हो गया ।

दुर्वासा ऋषि तीनों लोकों में भागते-भागते ब्रह्मा के लोक में पहुँचे । वहाँ उनकी भेंट नारद से फिर हो गई । उन्होंने दुर्वासा को भागते हुए देख कर मुस्कुराते हुए पूछा- ''इतनी जल्दी में आप कहाँ जा रहे हैं ?'' लेकिन उनके पास ठहर कर जवाब देने का समय नहीं था । उन्होंने पीछे आते हुए चक्र की ओर संकेत भर किया और जाकर ब्रह्मा के चरणों में गिर पड़े ।

''बचाइए, रक्षा कीजिए ब्रह्मदेव ! सुदर्शन चक्र मेरा पीछा कर रहा है ।''

ब्रह्मा ने अपनी लाचारी प्रकट करते हुए समझाया- ''ऋषिवर ! आप तो जानते हैं कि मेरा जन्म उस कमल में से हुआ है जो विष्णु की नाभि से निकला है । मैं भला उनके चक्र को कैसे रोक सकता हूँ ?''

दुर्वासा ऋषि वहाँ से भाग कर शिव लोक— कैलास पहुँचे और शिव के चरणों में गिर कर प्राण रक्षा की प्रार्थना की ।

शिव ने ध्यान टूटते ही दुर्वासा की ओर आते हुए सुदर्शन चक्र को देखा । वे बोले- ''यह तो विष्णु चक्र तुम्हें मारने आ रहा है । उनके चक्र

को उनके अलावा कौन रोक सकता है ? अब तो स्वयं विष्णु ही तुम्हारी सहायता कर सकते हैं ।"

दुर्वासा का अहंकार पिघल चुका था । उनकी तपस्या की सारी शक्तियाँ नष्ट हो चुकी थीं और अब वे असहाय और निर्बल अनुभव कर रहे थे। जब ब्रह्मा और शिव दोनों ने इनकी रक्षा करने से मुँह मोड़ लिया तब ये लाचार हो विष्णु की शरण में पहुँचे ।

"मैंने बहुत पहले ही अपने परम भक्त अंबरीष की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया था । अब तो मेरा चक्र उसी की आज्ञा का पालन करेगा । मैं इस बीच में नहीं पड़ना चाहता । आप कृपा कर अम्बरीष से ही रक्षा की प्रार्थना कीजिए ।" यह कहते हुए विष्णु ने भी रक्षा करने से इनकार कर दिया ।

बहुत हिम्मत करके तो वे विष्णु के पास आये थे क्योंकि उनके ही भक्त अंबरीष को नाहक सताने के कारण इस आपत्ति में आ फँसे थे । अब क्या मुँह लेकर वे अंबरीष के पास जायेंगे ? लेकिन प्राण-रक्षा का कोई उपाय भी न था । चक्र निरन्तर उनका पीछा कर रहा था । तीनों लोकों के स्वामी भी उनकी रक्षा में असमर्थ थे । यह सब सोच कर उनका रहा-सहा अहं भी धुल गया और वे अपने को एक क्षुद्र प्राणी समझने लगे ।

गर्व खत्म होते ही दुर्वासा को अंबरीष की शरण में जाने में कोई बाधा नहीं हुई । वे एक निर्बल व्यक्ति की तरह अंबरीष के चरणों को छूकर प्राणों की भीख माँगने लगे ।

यह दृश्य देख कर सुदर्शन चक्र स्वयं ही अदृश्य हो गया । इस घटना के बाद अंबरीष का नाम विष्णु के परम भक्तों में लिया जाने लगा ।

सूर्यवंशी राजाओं में गाधि बहुत प्रतापी राजा हुए । विश्वामित्र उन्हीं के पुत्र थे ।

विश्वामित्र ने कृताश्व से धनुर्विद्या सीखी थी और अनेक दिव्यास्त्रों को सिद्ध किया था । वे इस विद्या में बड़े प्रवीण माने जाते थे ।

राजा बनने के बाद वे एक बार वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में गये। वसिष्ठ ने अपनी कामधेनु की कृपा से राजा विश्वामित्र तथा उनके सैकड़ों सैनिकों और अधिकारियों को बहुत भारी भोज दिया। इस पर विश्वामित्र ने वसिष्ठ से अनुरोध किया- "यह कामधेनु मुझे दे दीजिए और बदले में चाहे आप दस लाख गायें ले लीजिए।"

लेकिन वसिष्ठ ने इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। इस पर विश्वामित्र को क्रोध आ गया और उन्होंने अपने सैनिकों को जबर्दस्ती काम-धेनु हाँक ले जाने का आदेश दिया।

तभी एक और विचित्र घटना हो गई। कामधेनु के शरीर से हजारों सैनिक उत्पन्न हुए जिन्होंने विश्वामित्र की सेना को पलक मारते ही नष्ट कर दिया। यह दृश्य देख कर विश्वामित्र को और भी आश्चर्य हुआ और यह सोचने लगे कि योग की शक्ति के सामने राजा की शक्ति कितनी तुच्छ है!

यह विचार आते ही उन्होंने राज्य से वैराग्य ले लिया और तपस्या करने लगे। घोर तपस्या द्वारा उन्होंने वसिष्ठ के समान ही ब्रह्मर्षि का सबसे ऊँचा पद प्राप्त किया।

एक बार वे एक महायज्ञ प्रारम्भ कर रहे थे। उन दिनों राक्षसराज रावण के अनुचर मारीच, सुबाहु तथा राक्षसी ताड़का आर्यावर्त में आकर तपस्या और यज्ञ में विघ्न डालते थे। ये राक्षस विश्वामित्र के यज्ञ को भी भंग कर रहे थे। इससे तंग आकर ये हिमालय में जाकर तपस्या करने लगे।

समाधि में ही विश्वामित्र को यह ज्ञान हुआ कि विष्णु ने लोक कल्याण के लिए रघुवंश में राम के रूप में अवतार लिया है। वे धर्म को नष्ट करने वाले राक्षसों के संहार के लिए धरती पर आये हैं। समाधि में ही उन्हें यह प्रेरणा मिली कि राम को शस्त्र विद्या की शिक्षा देने के लिए वे ही उपयुक्त गुरु हैं। ऐसी प्रेरणा मिलते ही वे अयोध्या के लिए चल पड़े।

परमार्थ विद्या

विजयवर्धन हालांकि बीस साल का खासा-भला हट्टा-कट्टा जवान था, लेकिन रोजी-रोटी कमाने की कोई बुद्धि उसमें नहीं थी। जब तक माता-पिता जीवित थे, न उसे कमाने की चिन्ता थी, न खाने-पीनेकी कमी। लेकिन अब उसे मालूम नहीं पड़ रहा था कि जीविका के लिए क्या करना चाहिए।

उसके गाँव के पास ही एक सिद्ध बाबा की कुटिया थी। लोगों में यह चर्चा थी कि वे बड़े-बड़े चमत्कार करने की विद्या जानते हैं।

विजयवर्धन ने आज तक सिद्ध बाबा के दर्शन नहीं किये थे और न ही कभी इसकी जरूरत महसूस हुई थी। लेकिन अब उसके सामने आजीविका की विकट समस्या थी। उसे आशा थी कि सिद्ध बाबा किसी न किसी उपाय से उसकी परेशानी अवश्य दूर करेंगे। इसलिए बहुत श्रद्धा और विश्वास के साथ वह एक दिन सवेरे उनकी कुटिया पर जा पहुँचा।

उस समय बाबा ध्यान में थे। विजयवर्धन उनके आसन से हट कर कुछ दूर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

ध्यान टूटते ही बाबा की नज़र विजयवर्धन पर पड़ी। उसे देखते ही पूछा- "बेटा! तुम क्या चाहते हो?"

विजयवर्धन ने झुक कर प्रणाम किया तथा फिर अपने आने का कारण बताया।

बाबा थोड़ी देर मौन रहे, फिर बोले— "वत्स! मैं तुम्हें धन तो नहीं दे सकता, परन्तु पेट भरने भर धन आता रहे, ऐसी कुछ विद्या दे सकता हूँ।"

"अन्धा क्या मांगे?- दो आँख। बस! इतनी कृपा बहुत है बाबा!" विजयवर्धन प्रसन्न होकर बोला।

"मैं तुम्हें एक ऐसी विद्या देता हूँ जिससे तुम्हारी आँखों को पृथ्वी के गर्भ में छिपे धन या किसी वस्तु को देख लेने की शक्ति मिल

कृपानन्द अवस्थी

जायेगी। लेकिन तुम अपने लाभ के लिए जैसे ही इस विद्या का उपयोग करोगे, यह शक्ति जाती रहेगी। दूसरों के लाभ के लिए इसका उपयोग कर अपनी आजीविका भर आराम से रोटी कमा सकते हो।" सिद्ध बाबा ने समझाते हुए कहा।

इतना कह कर बाबा ने अपने दण्ड और कमण्डल को उसकी आँख से स्पर्श करवाया। फिर कमण्डल से जल लेकर कुछ मंत्र का जाप किया और उसकी आँख पर उस जल के छींटे मारे। फिर पूछा- "वत्स ! क्या अब तुम बता सकते हो कि जहाँ पर तुम खड़े हो, ठीक उसके नीचे ज़मीन के अन्दर क्या है ?"

विजयवर्धन ने अपने पाँव के पास की ज़मीन को देख कर कहा- "इसके नीचे मिट्टी की कई परते हैं तथा उनके नीचे जल का प्रवाह है।"

"अब तुम जा सकते हो। लेकिन मेरी बातें गाँठ में बाँध लो। स्वार्थ के लिए इसका प्रयोग कभी नहीं करना।" सिद्ध बाबा ने अन्तिम चेतावनी देते हुए कहा।

विजयवर्धन ने कृतज्ञता पूर्वक बाबा के चरण छुए और अपने गाँव से दूर किसी अन्य स्थान के लिए चल पड़ा। चलते-चलते उसे एक जंगल मिला। जंगल से होकर यात्रियों का एक दल गुजर रहा था। यात्री जैसे ही इसके कुछ निकट आये, यह अचानक चिल्ला पड़ा- "रुक जाओ, आगे भयंकर दलदल है।"

यात्री रुक गये लेकिन समझ न सके कि बात क्या है। तभी विजयवर्धन उनके पास आकर समझाते हुए बोला- "यहाँ पर ज़मीन के नीचे काफी गहराई तक दलदल है। यदि आप लोग थोड़ा और आगे आ जाते तो मुसीबत में पड जाते।"

"लेकिन यह तुम कैसे कह सकते हो ? ऊपर से तो धरती सूखी हुई मालूम पड़ती है और इस पर काफी पौधे भी उगे हुए हैं ?" एक यात्री ने आश्चर्य के साथ प्रश्न किया।

"छिपी हुई चीज़ सबको दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन जिन पर किसी सिद्ध की कृपा हो जाये, वे सब कुछ देख सकते हैं।"

उस यात्री को विजयवर्धन की बातों पर विश्वास नहीं हुआ और अपने साथियों से यह

कह कर आगे बढ़ गया- "यह सब झूठ है। यहाँ कोई खतरा नहीं है। आगे बढ़ो।"

अभी वह दो ही तीन कदम गया होगा कि वह भस्स से नीचे धँस गया और कण्ठ तक दलदल में डूब गया। अन्य यात्रियों ने उसे किसी प्रकार डंडे का सहारा देकर खींचा। तब सभी यात्रियों को विजयवर्धन की बातों पर पूरा विश्वास हो गया और उन सब ने इस खतरे से बचाने के लिए उसे धन्यवाद के साथ चाँदी के कुछ सिक्के भी दिए।

इसके बाद विजयवर्धन जंगल पार कर एक गाँव में पहुँचा। वहाँ एक झोंपड़ी के अन्दर से एक बच्चे के रोने की आवाज आ रही थी। बच्चे की माँ भी रो-रो कर कह रही थी- "कई दिनों से मेरा बच्चा भूखा है। हे भगवान ! मैं इसे खाने के लिए क्या दूँ ?"

विजयवर्धन ने उस झोंपड़ी के अन्दर जाकर अपने चाँदी के सिक्के उस स्त्री को दे दिए। लौटते समय चौखट के पास आते ही वह अचानक रुक गया और आश्चर्य से चिल्ला उठा- "अरे! तुम्हारे घर में तो लक्ष्मी ही लक्ष्मी है, फिर भी तुम अपने बच्चे को नहीं खिला सकती !"

"क्यों हमारी फूटी किसमत पर हँसते हो भइया ?" बच्चे की माँ ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा।

"मैं सच कह रहा हूँ बहन ! तुम दरवाज़े के पास ज़मीन खोद कर देखो। यहाँ एक काँसे के बर्तन में सोने के ढेर सारे सिक्के पड़े हैं। अब रोज ही बच्चे को सोने की कटोरी में दूध-भात

खिलाओ।'' विजयवर्धन ने विश्वास दिलाते हुए कहा ।

उस स्त्री को यद्यपि विश्वास नहीं हुआ, फिर भी उसने स्वयं ही दरवाज़े के पास की ज़मीन खोद कर देखी। वह यह देख कर हैरान रह गई कि सचमुच वहाँ सोने के सिक्कों से भरा एक पात्र पड़ा है। वह खुशी से पागल हो गई। उसने विजयवर्धन को लाख-लाख शुक्रिया के साथ सोने के कुछ सिक्के भी दिये ।

इस प्रकार विजयवर्धन एक गाँव से दूसरे गाँव में घूमता रहा और छिपे हुए धन, खोई हुई चीज़ या घर के पिछवाड़े में ज़हरीले सांपों के बारे में बता कर लोगों की सहायता करता रहा। बदले में जो कुछ भी मिल जाता, उसी से सन्तोष कर गुजारा कर लेता ।

एक बार एक गाँव में वह एक खेत की मेड़ पर से गुज़र रहा था। तभी उसे एक स्थान पर ज़मीन में एक फुट नीचे गड़े एक पात्र में सोने के सिक्के दिखाई दिये ।

यह खेत दो भाइयों का था। वे दोनों अपनी थोड़ी-सी खेती से किसी प्रकार गुजर-बसर कर रहे थे। दोनों अपने खेत पर कठिन परिश्रम करते और आपस में प्रेम पूर्वक सुख से रह रहे थे। उनमें से छोटा भाई उसी खेत में हल चला रहा था। विजय वर्धन ने उसे बुला कर यह बात बता दी और आगे बढ़ गया ।

छोटे भाई के मन में लालच आ गया और उसने उसे रात में निकालने का निश्चय किया ताकि उसके बड़े भाई को यह पता न चले। जब वह आधी रात को फावड़ा लेकर चला तो उसके बड़े भाई को सन्देह हो गया और वह भी चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल पड़ा ।

जब छोटे भाई ने खेत से सोने के सिक्कों से भरा पात्र निकाला तो बड़ा भाई भी सामने आ गया और अपना हिस्सा माँगने लगा। छोटे भाई ने हिस्सा देने से साफ इनकार कर दिया। इस पर दोनों में झगड़ा हो गया और आपस में मार-पीट कर दोनों भाई बेहोश हो गये। सुबह में अन्य किसानों ने गाँव में लाकर उन दोनों की दवा-दारू की। विजयवर्धन, जो उस रात उसी गाँव में ठहरा हुआ था, इस घटना के बारे में सुन कर बहुत दुखी हुआ। वह सोचने लगा कि ऐसे ज्ञान से क्या लाभ जो दूसरों का अहित

करे। वह नहीं चाहता था कि उसकी विद्या से किसी को हानि हो ।

वह यह सोच कर दुखी हो गया कि उसी की गलती से दोनों भाई आपस में लड़ गये । वे पहले कितने प्रेम से रहते थे । यदि यह छोटे भाई को खेत में छिपे सोने के सिक्कों के बारे में न बताता तो ये आपस में क्यों लड़ते ! उसे इस विद्या से घृणा हो गई । वह समझ न सका कि क्या करे ।

इसलिए वह तुरन्त अपने गाँव में सिद्ध बाबा से मिलने चला गया और उन्हें सारी कहानी सुनाकर अपने मन की दुविधा बताई ।

सिद्ध बाबा ने इसकी बातें सुन कर आँखें बन्द कर लीं । थोड़ी देर ध्यान करके फिर बोले- "वत्स ! तुमने आज तक अपनी जीविका के लिए कोई पेशा नहीं अपनाया और इस अलौकिक विद्या से ही रोजी-रोटी चलाते रहे । तुम्हारी अशान्ति का यही कारण है ।"

"बाबा ! मैं अब इस विद्या के द्वारा अपनी रोटी नहीं कमाना चाहता । लेकिन मैं दूसरा काम क्या करूँ यह भी मुझे नहीं मालूम ?" विजयवर्धन ने कहा ।

"तुम ऐसा करो वत्स ! एक बार स्वार्थ के लिए इस विद्या का प्रयोग करो तो अपने आप ही यह विद्या चली जायेगी । अब रही तुम्हारे पेशे की बात ! इस विद्या के अपने लिए प्रयोग से जो तुम्हें धन मिले, उससे तुम कोई रोजगार शुरू कर दो या कुछ खेत खरीद लो ।" बाबा ने उपाय बताते हुए कहा ।

विजयवर्धन बाबा का आशीर्वाद लेकर प्रसन्नतापूर्वक चला गया और गाँव के किनारे टहलने लगा । तभी उसे एक स्थान पर ज़मीन के अन्दर चाँदी के सिक्कों का एक पात्र दिखाई पड़ा । उसने उसे खोद कर निकाला और उस धन से कुछ खेत खरीद लिए । फिर, परिश्रम पूर्वक खेती द्वारा अपने जीवन का निर्वाह करने लगा ।

उसने कुछ दिनों के बाद अनुभव किया कि परिश्रम सबसे बड़ी अलौकिक विद्या है, क्यों कि इससे किसी की हानि नहीं हो सकती ।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जनवरी १९८४ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

M. Natarajan

P. Sundaram

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ नवम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

सितम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : हे गजमुख तुम्हें प्रणाम!

द्वितीय फोटो : कहाँ हैं मेरे कार्तिकेय महान?

प्रेषक : नागेन्द्रकुमार, पावरगंज लोहरदगा, (बिहार)

पुरस्कार की राशि रु. ५० इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

चन्दामामा विशेष संवाद के समाधान

१. ग्रीकवासी ई. पू. ३२७ में आये। उसी वर्ष सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया।
२. निकोलो कोटे ने १४२० ई. में विजयनगर का भ्रमण किया था। ३. अथेनेसियस निकिटव १४७० ई. में आये थे। ४. डोमिगोस पोस १५२२ ई. में आये थे।
५. राजस्थान का जयपुर क्षेत्र।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

चन्दामामा के ग्राहकों को सूचना

यदि आप अपना पता बदल रहे हों, तो पांचवीं तारीख से पहिले ही अपनी ग्राहक-संख्या के साथ, अपना नया पता सूचित कीजिये। यदि विलम्ब किया गया, तो अगले मास तक हम नये पते पर 'चन्दामामा' न भेज सकेंगे।

आपके सहयोग की आशा है।

डाल्टन एजन्सीस, मद्रास-६०० ०२६

किट्टू एक साईकलिंग चैम्पियन है। उसे सब चाहते हैं। वह हमेशा हर रेस जीतता है।
CYCLES
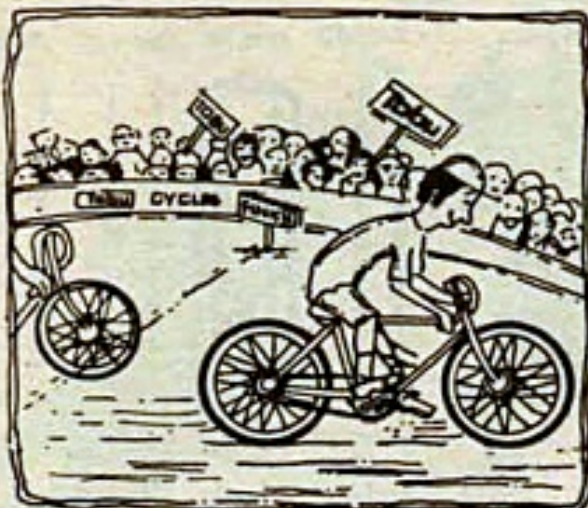
उसने साईकलिंग में बहुत सारे ईनाम जीते हैं।

किट्टू अपनी सफलता का राज़ बता रहा है।
TV

जब मैं छोटा था, तो मेरे अंकल ने मुझे टोबू साईकिल उपहार में दी।

मेरी साईकिल सब दोस्तों को अच्छी लगी और सब अपने लिये टोबू साईकिल चाहने लगे।

जल्दी ही सभी ने टोबू साईकिल खरीद ली और हम सब रोज़ टोबू साईकिल पर रेस लगाने लगे।
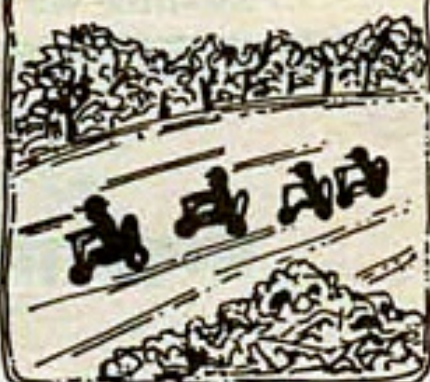
टोबू साईकिल पर घूमना मेरे बचपन का एक अंग था। बचपन से बड़े होने तक मैंने विभिन्न रंगों और मॉडलों की टोबू साईकिल पर रेस लगाई।
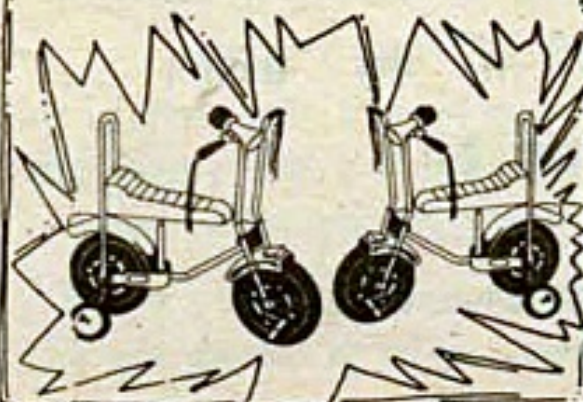
टोबू ने मुझमें आत्मविश्वास और मुकाबले में हिस्सा लेने का उत्साह पैदा किया।

बचपन का साथी
Tobu
बच्चों की साईकिलें

SUPERB

राम और श्याम
रूपहली धारियाँ
आधी छुट्टी वक्त, पेट दर्द का नहीं.
पेट में दर्द? क्या खाया आज तुमने?
ये हो ही नहीं सकता! ज़रा मुझे पैकट तो दिखाओ.
लाल, पीला नारंगी...
हरा, सफेद
पर रूपहला रंग कहाँ है?
रूपहला रंग! कौन सा रूपहला रंग?
तभी तो तुम धोखा खा गये. असली पॉपिन्स अब आती है रूपहली और रंग बिरंगी धारियों वाले चमकदार पैक में.
POPPINS
अगली बार ख्याल रखना नकली माल मत ले लेना...
जिससे पेट का दर्द हो जाये
पॉपिन्स गटकने के पहले...
ज़रा उनकी असलियत की जाँच परख कर लो.
रंग बिरंगे पैक पर रूपहली धारियाँ देख लो.
PARLE
POPPINS
पारले पॉपिन्स. पहले रूपहली धारियाँ देख लो, फिर रसीले स्वाद का मज़ा लो.
अब नक्कालों की चाल नहीं चलेगी.
everest/81/PP/103-hn.